उत्तर प्रदेश की लोक कलाएँ

– व्रत, पर्व एवं त्योहार

सांस्कृतिक कार्य विभाग उ.प्र. का प्रकाशन

आवरण :

मुख पृष्ठ : देव उठान एकादशी व्रत–मंगल चौक

अंतिम पृष्ठ : सजावट के लिए बनाया जाने वाला मोर का नमूना

संस्कृति विभाग उ०प्र०
उपहार स्वरूप भेंट

उत्तर प्रदेश की लोक कलाएँ

– व्रत, पर्व एवं त्योहार

लेखिका - डा. विद्याविन्दु सिंह
चित्राङ्कन - श्रीमती प्रभा पंवार

सांस्कृतिक कार्य विभाग, उत्तर प्रदेश

संस्कृति विभाग उ०प्र०
उपहार स्वरूप भेंट

सर्वाधिकार सुरक्षित– सांस्कृतिक कार्य विभाग, उत्तर प्रदेश

प्रथम संस्करण : मार्च 1994

नीता चौधरी, सचिव एवं निदेशक, सांस्कृतिक कार्य विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशित,
अनुराधा गोयल, उप निदेशक (प्रकाशन) द्वारा सम्पादित,
यूनाइटेड ब्लाक प्रिन्टर्स, 78 गौतम बुद्ध मार्ग लखनऊ, द्वारा मुद्रित।

पीठिका

व्रत– पर्व त्योहारों की बात करना भारतीय लोकमन की, लोक जीवन की बात करना है । भारतवर्ष ऊपर से भले ही गरीब दिखे पर भीतर से इसका मन बहुत सम्पन्न है । गरीब से गरीब आदमी भी खुशी मनाना चाहता है, इसलिए कि इस खुशी की हिलोर समूची जिन्दगी को छुए । भारत में चाहे वह किसी जाति का, मजहब का हो, यहाँ की मिट्टी के प्रभाव से हर एक आदमी यह विश्वास करता है कि हर खुशी बँटती है तो बढ़ जाती है।

उनके लिए त्योहार एक बहाना होता है अपने छोटे से दायरे को भूलने का और एक बड़ी इकाई को पहचानने का । जीवन में पर्वों, त्योहारों और व्रतों का बड़ा महत्त्व है । यह केवल मनोरंजन या क्षणिक परिवर्तन के लिए नहीं है । यह अपने को भरने के लिए तैयारी है । पर्व शब्द का अर्थ है भरना। दो पोरों के बीच में जैसे गन्ने में रस भरा रहता है वैसे ही प्रत्येक पर्व रस भरने की प्रक्रिया की शुरुआत भी होता है और उत्कर्ष भी । वह बाँस की तरह एक–एक पोर या गाँठ छोड़ता हुआ बढ़ता जाता है ।

त्योहार में एक सामूहिक चेतना रहती है, व्यक्ति अपने दायरे से बाहर जाता है । मनोरंजन और उल्लास इनमें स्वतः स्फूर्त होता है । इनके पीछे एक पूरी परम्परा है जो विरासत में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रहती है । इनमें लोक मानसिक तत्त्वों का निर्वाह होता है, लोक संस्कृति के विभिन्न आयाम मुखरित होते हैं । किसी भी राष्ट्र की सांस्कृतिक मान्यताओं का अध्ययन उसके पर्व-त्योहारों से किया जा सकता है । इनमें मानवीय, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक, आर्थिक, व्यावसायिक सभी तत्त्व सम्मिलित होते हैं । साथ ही उनमें पूरा लोक-मानस व्यक्त होता है । इसलिए किसी प्रदेश अथवा अंचल की सांस्कृतिक मान्यताओं के अवगाहन के लिए इन पर्व-त्योहारों में व्याप्त परम्पराओं का अनुशीलन महत्त्व रखता है । इनमें पूरी समष्टि चेतना रहती है जो काल और मनुष्य सभी को समझने की चेतना है । ये पर्व-त्योहार वर्ष के बारहों महीनों में व्याप्त हैं । सुविधानुसार माह क्रम से ही उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करना उचित होगा।

त्योहार और पर्व में एक मामूली सा अन्तर है । प्रायः तो हर पर्व को त्योहार भी कहा जाता है और त्योहार को पर्व । पर जब हम पर्व कहते हैं तो समय के एक विशेष विन्दु का ध्यान अवश्य रहता है । जैसे दीपावली, कार्तिक बदी अमावस्या को संध्या समय मनायी जायेगी पर दीवाली का त्योहार उससे पहले भी शुरू हो जायेगा । त्योहार में तैयारी अधिक है, काल विशेष के बिन्दु पर एक विशेष रूप से अपने को अर्पण करने का भाव उतना नहीं रहता ।

व्रत का स्वतंत्र अर्थ है । एक अर्थ है कि हम विशेष प्रकार का भोजन करने का और भोजन छोड़ने का संकल्प लें और उसे पूरा करें तो कहा जायेगा हम व्रत रह रहे हैं । व्रत का और गहरा अर्थ होता है, हम एक विशेष प्रकार की दीक्षा लें । व्रत दो प्रयोजन से किये जाते हैं। एक तो जब हम कोई अनुष्ठान करते हैं, कोई मांगलिक कार्य करते हैं या कोई शुद्ध कार्य करते हैं तो हम व्रत करते हैं । यह नैमित्तिक होता है। पर जब हम यह नियम बनाते हैं कि महीने में अमुक तिथि के दिन एक समय भोजन करेंगें या फलाहार करेंगे या निर्जल रहेंगे या सप्ताह में अमुक दिन ऐसा करेंगे तो वह नित्य व्रत कहा जाता है । नित्य व्रत का निश्चित अवधि तक निर्वाह करने के बाद उसका उद्यापन भी करते हैं । एकादशी का ग्यारह वर्ष रहने का, शिवरात्रि का चौदह वर्ष, प्रदोष का तेरह वर्ष व्रत करने के बाद उद्यापन होता है । उसके बाद व्रत विधान वैकल्पिक हो जाता है । यह व्रत का स्थूल रूप है । सूक्ष्म रूप में व्रत देह का और मन का केवल संयम ही नहीं एक विराट देह और मन से संयोजन भी है । इसीलिए व्रत में अपने को कष्ट देना वर्जित हैं । यदि व्रत शरीर और मन के पूरे उल्लास से सम्पन्न नहीं किया जाता तो वह सफल नहीं समझा जाता । गाँव की स्त्रियां अपने प्रमुख सौभाग्य व्रत तीज में निर्जल रहते हुए भी दिन भर कथा वार्त्ता, चित्रांकन, गीत, सिंगार–पटार में बिताती हैं जिससे व्रत खले नहीं । व्रत भी इसी कारण त्योहार हो जाता है । व्रत एक अर्थ में और अलग है कि यह व्यक्तिगत होता है । हर व्यक्ति अपनी इच्छा से कुछ व्रत रखता है। कुछ व्रत ऐसे हैं जिनके बारे में यह मान लिया जाता है कि यह सबके रहने के लिए है, जैसे देवोत्थान एकादशी, जन्माष्टमी या रामनवमी या सभी स्त्रियों के लिए तीज, सभी सुहागिन स्त्रियों के लिए करवा चौथ । ये व्रत भी व्यक्तिगत ही होते हैं, केवल अनेक लोग एक साथ व्रत करते हैं इसलिए ये एक बड़े त्योहार का रूप धारण कर लेते हैं पर त्योहार का पक्ष व्रत से अलग ही रहता है । व्रत में जहाँ गम्भीरता का भाव अधिक प्रबल रहता है, वहीं त्योहार में उच्छलता का भाव अधिक प्रबल रहता है और पर्व में सम्पूर्णता का भाव अधिक महत्त्व रखता है । इन तीनों के योग से जीवन एक ओर अनुशासित होता है, दूसरी ओर सबके भावों में साझीदार भी होता है। दूसरे शब्दों में व्रतों– त्योहारों और पर्वों की सबसे बड़ी भूमिका यह है कि ये जीवन को संतुलित रखते हैं और जीवन को न उच्छृंखल होने देते हैं न खाली होने देते हैं । वे जीवन के रस की पहचान कराते हैं ।

इन तीनों के साथ धीरे–धीरे कहानियां, गीत और लोक कलाएँ जुड़ती चली गयी हैं । अधिकांश कहानियाँ पौराणिक हैं पर कुछ कहानियां ऐतिहासिक भी हैं । राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, मुहम्मद, ईसामसीह या सन्तों फकीरों के जन्म लेने की तिथि के दिन जो व्रत त्योहार होते हैं उनके साथ ऐतिहासिक कहानियाँ भी जुड़ी होती हैं।इनमें भी कुछ कहानियां तो विशुद्ध लोकमन की उपज हैं । एक जातीय समृद्ध लोक कल्पना ने हर व्रत के साथ एक अद्भुत कथानक का ताना– बाना बुना है जो एक साथ

काव्यमय और रहस्यमय हैं । व्रतों के अनुष्ठान के साथ इन कथाओं का श्रवण वाचन भी एक आवश्यक अंग बन गया है शायद इसलिए कि व्रत या त्योहार एक सीमित देशकाल में अनुष्ठित नहीं होता वह सम्पूर्ण देश काल में अनुष्ठित कराना होता है । यह बोध तब तक नहीं कराया जा सकता जब तक व्रत कथा को व्रत का अंग न बनाया जाय । अंग बनाने से यह प्रतीति होती है जैसे व्रत का अनुष्ठान एक पुनर्जन्म है उस मूल अनुष्ठान का और एक पुनः दृढ़ीकरण है एक मूल संकल्प का । ऐतिहासिक दृष्टि से बात यह है कि यज्ञ व्यापार का ही व्रत के रूप में रूपान्तर हुआ है इसीलिए यज्ञ के सभी भीतरी अर्थ व्रत के अनुष्ठान में समा गये हैं । यज्ञ की शुचिता, गरिमा, मंत्रमयता और सर्वमयता व्रत के ये सब अंग बन गये हैं । इसीलिए प्रायः अधिकांश व्रत पर्व, त्योहारों में लोक कलाओं का अंकन और उपयोग आवश्यक माना गया है । इन चित्रों में यज्ञ की क्रियाओं, कथाओं, गीतों के कथानकों का सुनियोजित प्रयोग मिलता है ।

जिस प्रकार संवत्सर के अनेक विवर्तनों या मोड़ों के साथ नये-नये प्रकार के यज्ञ होते हैं उसी प्रकार हर महीने की विशिष्ट तिथियों के साथ अलग-अलग प्रकार के व्रत भी अनुष्ठित होते हैं । जिस प्रकार किसी विशेष प्रकार की कामना के लिए या विशिष्ट प्रकार के पद के लिए विभिन्न प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान होता था उसी प्रकार विभिन्न कामनाओं की पूर्ति के उद्देश्य से व्रत पूर्वक कार्य अनुष्ठान होते हैं । कोई नवरात्र व्रत रखता है, कोई त्रिरात्र व्रत रहता है, कोई पचभीखा (भीष्मपंचक) व्रत रहता है। जिस प्रकार निष्काम भाव से आत्मज्ञान के लिए अग्नि चयन यज्ञ होता था उसी प्रकार निष्काम व्रत भी आत्मशुद्धि के लिए किये जाते हैं ।

व्रत में यज्ञ के साथ-साथ तप और योग का भी कुछ अंश जुड़ गया है।तप का अंश इस अर्थ में कि सुख सुविधा के उपभोग से कुछ समय के लिए अपने को स्वेच्छा से विरक्त करना व्रत का आवश्यक अंग है ।योग का अंश इस अर्थ में कि चित्तवृत्ति को एक विशेष धारा की ओर ले जाना योग की ही भांति व्रत का प्रमुख लक्ष्य होता है।

सभी त्योहारों में व्रत रखना आवश्यक नहीं होता- जैसे दशहरा, दीवाली और होली में उपवास का व्रत नहीं रखा जाता । कुछ व्रत ऐसे भी होते हैं जो एकान्त रूप में किये जाते हैं । इसलिए वे त्यौहार के रूप में मनाये नहीं जाते । जो कुछ आह्लाद या उल्लास है, वह भीतर ही रहता है । व्रत का सम्बन्ध शोक से भी होता है । स्वजन की मृत्यु के बाद समस्त कुटुम्बी निश्चित अवधि तक उपवास भी करते हैं तथा कुछ और अवधि तक एकाहार भी करते हैं। एकाहार में भी बहुत ही विरस और सामान्य भोजन लेते हैं । क्योंकि ऐसा ही भोजन शोक के वातावरण के समय संगत माना जाता है । कुछ व्रत आत्मशुद्धि के लिए होते हैं जैसे मुसलमानों में रोजा, जैनियों में **पर्युषण** व्रत या हिन्दुओं में चान्द्रायण व्रत (जिसमें चन्द्र की कलाएँ घटने-बढ़ने के साथ भोजन के ग्रास घटाये बढ़ाये जाते हैं और महीने भर में व्रत पूरा होता है ।)

यह तो बात शास्त्रीय चिन्तन की हुई । लोक की दृष्टि से जब हम इन व्रतों त्योहारों और पर्वों की बात करते हैं तो एक और अध्याय जुड़ जाता है । वह अध्याय है भारत के विशेष संदर्भ में मनुष्य के दैनंदिन कर्म का। खेतिहर आदमी के पर्व त्योहार खेती के विविध व्यापारों के साथ जुड़े होते हैं । दूसरे व्यवसायों वाले लोगों के त्योहार उनके व्यवसायों से जुड़े होते हैं । पर सभी व्यवसायों के लोग कुछ त्योहार समान रूप से मनाते हैं । दैनंदिन कर्म का एक दूसरा पक्ष है आसपास के परिवेश के साथ जुड़ाव । उस परिवेश में गाय, बैल, हाथी, मोर आदि पशु-पक्षी तथा सर्प, जैसे विषैले जीव-जन्तु भी आते हैं और उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए भी त्यौहार होते हैं उनके उपकार की कथाएँ होती हैं, उनके चित्र उकेरे जाते हैं । इनकी कथाओं गीतों और लोक चित्रों में प्रकृति ही उपादान भी होती है और माध्यम भी । उस परिवेश में तुलसी का पौधा आता है और कार्तिक के महीने में उसके आगे दिया जलाया जाता है, उसकी जड़ों में प्रतिदिन प्रातः काल जल डालकर जल ग्रहण करने का विधान होता है । उस परिवेश में बादल भी आता है, जो न आये तो आँगन में पानी भरकर बच्चे नंगे नचाये जाते हैं मानो बादल को चुनौती दे रहे हों कि तुम भी अपने सारे आवरण खोलो और खुल करके बरसो । बहुत पुराने समय से भारत ही नहीं विश्व भर के खेतिहर समाजों में एक उर्वरता अनुष्ठान सूखा पड़ने पर सम्पन्न होता था । स्त्रियाँ अनावरण होकर खेत जोतती थीं मानों उनके ब्याज से धरती अपने प्रकृति पुरुष मेघ को आमंत्रण देती है कि इस स्वयं प्रस्तुत क्षेत्र में वर्षा के उद्भेद से नयी सृष्टि का बीज वपन करें । अभी भी स्त्रियों के कुछ विशेष व्रत जैसे हथिया या पिड़िया प्राचीन खेतिहर समाज की मानसिकता के प्रति स्मरण है। जैसे हथिया (हस्त नक्षत्र) में तेरह दिन तक स्त्रियां हथिया की कहानी कहती हैं और तब पानी पीती हैं। इस कहानी में महाभारत की कथा और शिव पार्वती की कथा का एक विचित्र सम्मिश्रण है । उस सम्मिश्रण के कारण कथा एक विचित्र मानवीय आकांक्षा और उसकी पूर्ति की कथा बन गयी है ।

पिड़िया (रुद्रवत) में अगहन की अमावस्या के बाद जो प्रतिपदा पड़ती है उस दिन से पिड़िया बनती हैं । सोलह कलाएँ चन्द्रमा की होती हैं । सोलहवीं कला (अमावस्या की अदृश्य कला) को अमृता कहते हैं । अमृता का अर्थ है समाप्त न होना, अमर होना । इसीलिए सोलह-कथाएँ कही जाती हैं । यह खेती से सम्बद्ध है । अतः चित्रों में उसका प्रभाव देखा जा सकता है ।

अमावस्या को जो यज्ञ होता था, यह उसका अंश है । पुराणों में शिव की कथा है- चन्द्रमा को शिव मस्तक पर धारण करते हैं और इसी के नीचे शिव का तीसरा नेत्र (ज्ञान नेत्र) होता है । यह रुद्रव्रत उसी की ओर संकेत करता है । इस आशय के अभिप्राय लोक चित्रों में स्पष्ट देखे जा सकते हैं।

इन व्रतों और त्योहारों का रूप कुछ दिखावटी और भावहीन होता जा रहा है । विशेष करके लोक व्रतों का अनुष्ठान एक

अनियोजित नगरीकरण के कारण धीरे-धीरे लुप्त हो रहा है जहाँ इनका अनुष्ठान हो भी रहा है वहां उनके प्रयोजन की पहचान और वह प्रयोजन जिस विश्व दृष्टि से जुड़ा हुआ है, उस विश्व दृष्टि की पहचान खोती जा रही है । इसलिए आवश्यक है कि उनके बारे में प्रामाणिक जानकारी प्रस्तुत की जाय और उस जानकारी के साथ-साथ उससे सम्बद्ध कहानियों चित्रांकनों की भी जानकारी यथा सम्भव दी जाय ।

प्रस्तुत ग्रंथ केवल जानकारी के उद्देश्य से नहीं है यह सांस्कृतिक जन-जागरण के उद्देश्य से भी लिखा गया है । क्योंकि इन तीज- त्योहारों के पीछे कई गहरे सांस्कृतिक मर्म छिपे हैं ।

एक उद्देश्य तो यह है कि ऐतिहासिक हर्षदायक अवसरों का स्मरण करना, दूसरे व्रत उपवास करके मानसिक और आत्मिक उपलब्धि प्राप्त करना । इसमें बहुत साधना भी करनी पड़ती है जिससे आत्मबल बढ़ता है । उदाहरण के लिए चाँद की पूजा करने और चाँद देखकर व्रत तोड़ने वाले त्योहारों में बरसात के दिनों में यदि चाँद न दिखे तो न पूजा होती थी न जल ग्रहण किया जाता था । स्त्रियाँ पहले पूरे चौमासे का व्रत किया करती थीं और रात में चाँद देखकर भोजन करती थीं । निश्चय ही इन सबसे आत्मिक शक्ति का अर्जन होता है । जेठ की लू तपती धरती पर साष्टांग दण्डवत करते हुए परिक्रमा करना निश्चय ही साधना है ।

एक बात और है, देश के विभिन्न भागों के लोग रोजी-रोटी की तलाश में जाते हैं और कहीं बसकर वहीं के होकर रह जाते हैं । वे क्षेत्रीय संस्कृति, उसके रीतिरिवाज, पर्व त्योहार, कथा, गीत, कलाएँ लेकर आते हैं और कालान्तर में वे सभी रीतिरिवाज पर्व त्योहार वहाँ के पर्व त्योहारों में घुल मिल जाते हैं । हाँ, यह बात और है कि जो नितांत क्षेत्रीय पर्व, त्योहार हैं वे सीमित मात्रा में ही किये जाते हैं ।

मानव सभ्यता कभी देश काल की सीमा में आबद्ध नहीं रहती । दीप से दीप जलते हैं, इसलिए किसी क्षेत्र विशेष की ही कोई विशेषता है, यह बात प्रमाण के साथ नहीं कही जा सकती, खास करके लोकसंस्कृति के संदर्भ में क्योंकि इसकी जड़ें देश की माटी में गहरी गंड़ी होती हैं और पूरे देश में उसका विस्तार होता है । पर्व निरन्तर रस की, स्वाद की श्रृंखला बनाये रखते हैं । त्योहार स्थानीय होते हुए भी सार्वजनिक होते हैं और सार्वजनिक होते हुए भी अपनी स्थानीय विशेषताओं से युक्त होते हैं । ये परस्पर प्रभावित करते रहते हैं । यह प्रभाव और विशिष्टता लोक कलाओं में बहुत सूक्ष्म रूप से पहचानी जा सकती है ।

कुछ त्योहार ऐसे हैं जिनमें हर वस्तु को प्राणमय मानने का दर्शन स्वतः ही व्यक्त हुआ है । जैसे चूल्हे को छुट्टी, घर को छुट्टी । ये जनाने त्योहार कहे जाते हैं । इस दिन बसियौरा खाया जाता है और गीत गाया जाता है।

मैं इतना अवश्य कहना चाहूंगी कि त्योहारों के बारे में विश्लेषणात्मक दृष्टि से विवेचन करना कठिन है।संस्कृति संश्लेषणात्मक होती है। वहाँ बिखराव नहीं होता विभिन्न बिखरावों को समेटा जाता है । विभिन्न ऋतुओं में आने वाले इन व्रत, पर्व त्योहारों, उत्सवों में व्यक्ति स्वयं को रीता करता है और फिर भरता है । उसका यह रीता होना और भरना ही जीवन की गतिशीलता है। आज प्रायः लोग इन पर्व त्योहारों से जुड़ी लोक संस्कृति की रक्षा के लिए चिन्ता व्यक्त करते हैं । पर यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि ये पर्व त्योहार कुछ तो ऐसे हैं जो जब तक भारतीय नारी आदिम संस्कारों से बंधी रहेगी, तब तक ये सुरक्षित हैं।

ये सांस्कृतिक प्रतीक काल की चेतना के साथ बदल जाते हैं । होली, दीपावली आदि पर्व उसी तरह से चले आ रहे हैं पर उनका रूप बदलता जा रहा है । पहले पकवानों का आदान-प्रदान भर-भर थाल होता था । आज यह प्रथा बहुत महँगी पड़ती है । आज त्योहार खुशी के उतने नहीं, जितने खर्च की चिन्ता के प्रतीक बनते जा रहे हैं । खाने पीने की चीजों का रूप बदल रहा है । समयाभाव तथा रुचि और उत्साह की कमी के कारण स्त्रियाँ अब स्वयं वे चीजें नहीं बनातीं, बाजार से खरीद लेती हैं । परस्पर अवलम्बिता और परस्पर सौमनस्य की भावना एक झूठे अभिमान के नीचे दबती जा रही है । यह झूठा अभिमान कृत्रिम सम्पन्नता से आ रहा है । सम्पन्नता तो ठीक ही है पर मूल्यों को छोड़कर सम्पन्नता अच्छी नहीं लगती। यह सम्पन्नता अन्त में भयावह हो जाती है । इसका एक दृष्टान्त आज का समाज है । जहाँ सम्पन्नता आयी है पर मजहबी और जातीय सीमाओं को लाँघकर जो भाईचारा पनपता था वह मुरझा रहा है और परस्पर अविश्वास व विद्वेष पनप रहे हैं । हिंसा नग्न नृत्य कर रही है । इस पुस्तक का उद्देश्य यह है कि हम अपने जीवन को सहज काल प्रवाह के साथ जोड़ें और चूंकि इस जोड़ने में व्रत त्यौहार और उससे जुड़ी लोक कलाएँ सहायक होती हैं अतः उनको पूरी अर्थवत्ता के साथ फिर से अपनायें, जिससे हम लोक मंगल की एक नयी भूमिका फिर से तैयार कर सकें । यदि इस प्रकार के प्रयत्न और भी क्षेत्रों में होंगे तो इससे बल मिलेगा । नहीं तो न केवल हमारी भाषा और कला के बहुत से मुहावरे अर्थहीन हो जायेंगे वरन् उसके साथ ही हमारे चैतन्य प्रवाह की बहुत ही सरिताएं सूख जायेंगी । लोगों से कहा जायेगा "सात वार नौ त्योहार" तो लोग उसका अर्थ नहीं समझेंगे और अर्थ समझेंगे भी तो खिल्ली उड़ायेंगे ।

इस पुस्तक में नियत कार्यक्रम से अनुष्ठित किये जाने वाले व्रत, पर्व, त्यौहारों का संक्षिप्त परिचय है, उनसे सम्बद्ध लोक कला की कुछ सामग्री है, विशेष प्रयोजन से भी अनुष्ठित किये जा सकने वाले कुछ व्रत पर्व त्योहारों का अत्यन्त संक्षिप्त परिचय है । इस कार्य के दौरान मेरे मन में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पूरे भारत की मानसिकता एक है और यदि थोड़ा भी सौहार्द कहीं बचा हुआ है तो वह इन व्रत त्योहारों में ही सबसे ज्यादा प्रकट होता है ।

प्रस्तुत पुस्तक कोई विश्वज्ञान कोश नहीं है यह समाज शास्त्रीय या नृतत्त्व शास्त्रीय विवेचन भी नहीं है, पर धर्म की व्यापक धारणा के अनुसार एक संक्षिप्त विवरण है । इसमें ऐतिहासिक

दृष्टि का भी कहीं–कहीं सीमित ही उपयोग किया गया है । इसमें मुख्य रूप से समग्रतावादी दृष्टि रखी गयी है और जीवित रूप में जिस रूप में अनुष्ठान सम्पन्न हो रहे हैं उसके साथ जो भी वाचिक साहित्य कला और कर्मकाण्ड जुड़ा हुआ है इन सबको परस्पर सम्बद्ध देखते हुए भी विवेचन प्रस्तुत है । इस पुस्तक में लोक चित्र दिये जा रहे हैं । वाचिक साहित्य से प्राप्त लोकगीत और लोककथाओं का तथा पौराणिक कथाओं का संदर्भ पूर्वक विस्तृत उपयोग इस छोटे कलेवर में संभव नहीं। अतः अति संक्षिप्त रूप से ही विवेचन प्रस्तुत है । लोक कलाओं के सौन्दर्य बोध के बारे में भी कुछ बातें कहना चाहती हूं:–

किसी भी कला का सौन्दर्य–बोध समझने के लिए देश–काल का ज्ञान होना आवश्यक है, क्योंकि तब ऊपरी सतही सौन्दर्य को ही न देखकर भीतरी सौन्दर्य का बोध किया जा सकता है । अतः लोककला के सौन्दर्य बोध के सम्बन्ध में कुछ कहने से पूर्व उसके देश काल और अभिप्रायों के सम्बन्ध में कुछ चर्चा करना आवश्यक है ।

हर लोककला का एक चौखटा होता है, जो पूरे स्थान को एक घर बनाता है और उसे भरा पूरा करता है । भारतीय लोक–मानस में देश की जो कल्पना या अवधारण है वह "घर" की है । लोककला के भित्तिचित्र या भूमि पर बने चौक आदि में प्रायः चौकोर आकृति अधिक मिलती है ओर उसके भीतर गोल आकृतियाँ होती हैं । इस चौकोर आकृति से बाहर का संसार व्यक्त होता है। गोल आकृति भीतर का संसार है । बाहर का संसार काल को भी अपने में समेटे रहता है ।

काल सतत प्रवाही है, काल के इस प्रवाह को द्योतित करने के लिए प्रायः हर चित्रकारी में "लहर" और "कल्पवल्ली" बनती है ।

भारतीय चिन्तन में नर–नारी दोनों ही एक दूसरे के पूरक माने गये हैं, ये दोनों एक दूसरे की आकांक्षा के लिए होते हैं । इस आकांक्षा और पूरक भाव को व्यक्त करने के लिए, पशु, पक्षियों और मानवों के जोड़े बनाये जाते हैं ।

लोककलाओं में फलवाले वृक्ष जैसे आम, केला आदि अधिक चित्रित होते हैं । यह जीवन को फलयुक्त करके परिपूर्ण बनाने की आकांक्षा के लिए होता है । इसी प्रकार आस–पास का परिवेश और जीवन अपने साधनों के माध्यम से व्यक्त करने के लिए घर–गृहस्थी के उपकरण, अनाज का भण्डार आदि चित्रित किया जाता है ।

इन चित्रों को देखने से यह लगता है कि स्थान भरा भी है और विभक्त भी है । बीच में अलग–अलग भाँति–भाँति के प्रतीक हैं पर विभाजन की कोई रेखा खींची नहीं गयी है । यह अवश्य है कि बीच में दो प्रतीकों को जोड़ने का कोई माध्यम है । ये जोड़ने वाले माध्यम बड़े ही मौलिक होते हैं । एक ध्यान देने योग्य विशेषता प्रायः इसमें और होती है कि विभाजन को इंगित करने के लिए सीधी रेखा बीच में नहीं बनाते, अलगाव प्रतीकों के माध्यम से ही व्यक्त होते हैं ।

लोककलाओं में चित्रित प्रतीकों का अध्ययन भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए "नाग या सर्प" को अनंतकाल के लिए चित्रित किया जाता है क्योंकि शेषनाग अनंत हैं । अनंत इच्छा (काम) का भी प्रतीक है। इसी लिए काम (इच्छा) के प्रतीक रूप में भी ये सर्प बनते हैं। नाग लोक संस्कृति में पूज्य हैं । काल (मृत्यु) के भय से मुक्ति पाने के लिए भी नाग देवता को प्रसन्न किया जाता है । काल की उपस्थिति सर्वत्र स्वीकार की गयी है । इस लिए इस चित्र में यह भाव भी जुड़ा रहता है कि काल (मृत्यु) शाश्वत है इसलिए इससे भयभीत न हो, पर उसे भूलो भी नहीं, समय का, छोटे से जीवन का अधिक से अधिक सदुपयोग करो।

लोककलाओं में सात की संख्या में भाई, बहन, भाभी आदि भी चित्रित किये जाते हैं । इसका कारण है कि हमारी संस्कृति में सात की संख्या बहुत महत्त्वपूर्ण है । यहां सप्तमातृकाओं की अवधारणा है और सप्तऋषियों की भी, साथ ही सात समुद्र भी हैं। इसलिए सात की संख्या कई अर्थों को द्योतित करती है।

वैसे सात अवधि निर्धारक संख्या भी है । सात सोपान, सात काण्ड, सात पोर, सात गाँठ, सात हांथ आदि का उल्लेख बार–बार आता है। सात हाथ का आदमी पूरा आदमी माना जाता था । विवाह में सात–बार की प्रतिज्ञा सप्तपदी होती है । सात भाँवरों से कन्या परायी हो जाती है ।

सात की संख्या महत्वपूर्ण हो गयी है । सात का एक और महत्त्व है कि सात दिन का एक सप्ताह होता हैं । सात दिन इधर और सात दिन उधर बीच में एक अष्टमी, इसी का पखवारा होता है। इसीलिए अष्टमी का भी अत्यंत महत्त्व है । भारतीय संस्कृति में सप्त नदियों की महिमा है–

गंगेव यमुनेव चैव गोदावरि सरस्वती ।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेस्मिन सन्निधि कुरु ।।

(गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी इस जल में तुम सब आ जाओ, यह कहकर सातों नदियों का आवाहन किया जाता है)

इसी प्रकार सप्त पर्वतों का, सात औषधियों का वर्णन हुआ है । शुभ कार्य में मंगल कलश के साथ सात जगह की मिट्टी रखी जाती है । सात पुरियाँ तो प्रसिद्ध हैं ही ।

प्रायः कोहबर, भित्ति चित्र और चौक आदि में चन्द्रमा, सूर्य अवश्य चित्रित होते हैं । ये दिन और रात अर्थात् काल के द्योतक हैं । चन्द्रमा भीतर का मन है, मन का प्रकाश है, सूर्य बाहर का संसार है, आँख का प्रकाश है, इसके साथ ही चन्द्रमा और सूर्य लोक मानस के सनातन साक्षी भी हैं ।

व्रत कथाओं से सम्बन्धित कथानक उस व्रत या त्योहार पर्व के अवसर पर दीवाल, भूमि अथवा लकड़ी के पाटे पर बनाये जाते हैं। इनके प्रतीकों के अर्थ उस कथा से ही अधिक स्पष्ट होते हैं ।

प्रायः लोक कलाओं में दही की दहेंड़ी लिए हुए ग्वालिन बनती है। दही शुभ शकुन है और उसे लिए हुए सौभाग्यवती ग्वालिन का चित्र समृद्धि की आकांक्षा से बनता है । कोई बाहर शुभ

कार्य से जा रहा हो तो दही गुड़ खिलाया जाता है, वर–वधू को सर्वप्रथम दही गुड़ से मुँह जूठा कराया जाता है । नयी फसल का नया अन्न जिस दिन सर्व प्रथम शुभ साइत में लाया जाता है उस दिन दही के साथ ही खाकर दही के कटोरे या दहेंड़ी का दर्शन भी किया जाता है । कहीं कोई आवश्यक कार्य से बाहर जा रहा हो तो उसके कानों में "दही मछली" का नाम भी सुनाया जाता है। प्रश्न उठता है कि लोक विश्वास के अनुसार कहीं दूध पीकर तो जाने की मनाही है पर दही इतना "शुभ" कैसे हो गया जब कि वह दूध का ही रूपांतर है । कारण यही समझ में आता है कि दूध में तत्काल विकृति आने का दोष होता है और दही एक प्रकार से दूध की छिपी हुई सक्रियता है। लोककलाओं का लक्ष्य मानव की छिपी हुई शक्ति और सक्रियता को उभारना होता है तथा जीवन की खटास में से भी नवनीत निकालने का संदेश देना होता है ।

इसी प्रकार मछली भी शुभ शकुन के रूप में चित्रित होती है । "मीन" मनुष्य की आत्मा है, उसका जल से विलग होते ही प्राण त्याग देना सच्चे प्रेम का प्रतीक है । जीवन में प्रेम के महत्त्व की द्योतक है 'मीन' ।

आड़ी, तिरछी, सीधी रेखाओं से ये चित्र बनते हैं । ये रेखाएं आदिम काल से ही मिलती हैं । रेखाओं से ही मानव आकृतियाँ बनती हैं। प्रायः इन मानव आकृतियों के कदम आगे बढ़े हुए बनाये जाते हैं । आगे को बढ़ा कदम गति को महत्त्व देता है । इसीलिए इन चित्रों में चेहरा नगण्य होता है क्योंकि यहाँ केवल गति को महत्त्व देना अभिप्रेत होता है। जहाँ पर आँख को महत्व देना होता है वहां अनुपात में बड़ी आँख बनायी जाती हैं । कहीं–कहीं देवी के चित्र में आँखे बड़ी दिखायी जाती हैं उसका अर्थ देवी की विराट, उदार, करुणामयी दृष्टि का बोध कराना होता है । मूर्त्ति कला में भी नारी के मातृ अंगों का उभार मातृत्व और वत्सलता के भाव को प्रकट करने के लिये ही होता है ।

जिस प्रकार काल को द्योतित करने के लिए सूर्य चन्द्रमा बनते हैं, उसी प्रकार किसी कथानक को स्पष्ट करने के लिए देश और स्थान के विभाजन के लिए बीच में वनस्पति चित्रित की जाती है ।

काल का बोध प्रायः आकृति से होता है। इन लोककलाओं में अमूर्त को मूर्त रूप देने का भी सार्थक प्रयत्न किया जाता है । देश के मुख्य घटक पशु, पक्षी युग्म बनाकर भी भाव अभिव्यक्त किया जाता है ।

इन चित्रों में "लता" या "बेल" घेरने के लिए बनायी जाती है, जो जीवन की निरंतरता को व्यक्त करती है । प्रायः कमल का विस्तार करके चित्र को बढ़ाया जाता है इसे लोक भाषा में कुसबढ़ाँव भी कहते हैं । इसका अभिप्राय है कि एक नाल से विस्तार होता है जो वंश वृद्धि की आकांक्षा का काम करता है, कमल दल एक से दूसरा गुंथा हुआ भी होता है । यह एक दूसरे में ओत प्रोत होना तथा परस्पर सम्बद्धता का द्योतक है । संसार की कोई भी चीज एक दूसरे से असम्बद्ध नहीं है । मिलकर परस्पर सहयोग से ही पूर्णता प्राप्त होती है ।

कमल पत्र "पुरइन" का भी लोककलाओं में अत्यधिक महत्त्व है । उसकी जल में रहकर भी जल से निर्लिप्तता मानव–जीवन को बहुत कुछ संदेश देती है । इसके साथ ही उसकी जड़ जमीन से जुड़ी होती है, बीच में जल है उसका जमीन से जुड़ा होना दिखता नहीं है पर अन्ततः वह भूमि से ही अपनी खुराक ग्रहण करती है । आज के मानव को अपनी जमीन से जुड़े रहने का संकल्प याद दिलाती है यह "पुरइन" ।

इसी प्रकार हाथी का चित्रांकन शक्ति, गंभीरता, और संतान का अभिप्राय व्यक्त करता है । घोड़ा गति और तीव्रता का बोध कराता है । इन चित्रों के विविध रूप हैं । यह गहन अध्ययन का विषय है । एक ही चित्र से कई–कई अर्थ अभिव्यक्त होते हैं ।

लोककला के प्रतीकों और अभिप्रायों का अध्ययन अलग चिन्तन का विषय है, जो आज के परिपेक्ष्य में अत्यन्त आवश्यक हो उठा है । लोककला में जो एक अनगढ़ सौन्दर्य है वह अपने में एक अनोखापन स्वयं ही प्रस्तुत करता है । इस अनगढ़ता के कारण उसमें विस्तार की अनंत संभावनाएँ हैं । वह नित्य नवीन होता रहता है पर फिर भी कुछ ऐसे तत्व हैं जो उसके मूल स्वरूप को बनाये रखते हैं ।

लोककलाओं की विषय वस्तु में प्रायः नृत्य, गान, अलंकरण, प्रसाधन और प्रकृति का सौन्दर्य अधिक है । सुकुमार और ललित भावों की अक्षय स्रोत हैं हमारी लोककलाएँ ।

सबसे बड़ी बात है, लोक कलाओं की समग्र दृष्टि । यह व्यक्ति के लिए नहीं समष्टि के लिए होती है जो सहजीवन की प्रेरणा देती है। लोककलाओं का लक्ष्य है मन को आनन्द रस से सराबोर करना । कोई भी आनन्द व्यक्ति अकेले नहीं उठा सकता। दुःख तो आदमी अकेले झेल सकता है पर आनन्द तो किसी के साथ बाँटकर ही उठाया जा सकता है । लोककलाओं का मूल उद्देश्य उस आनन्द की प्राप्ति कराना है ।

कुछ लोग लोक कलाओं को कला का आदिम स्वरूप मानते हैं पर कुछ आलोचक लोककला को कला का विकृत रूप मानते हैं जो सरासर अज्ञान है । कला लोक कला से नये आयाम, नये अर्थ ग्रहण करती है । कला व्यक्ति परक हो सकती है इसलिए उसमें उतना अवकाश संभव नहीं। इसीलिए उसे लोककला से जोड़ा जाता है, क्योंकि लोककला जन सामान्य की वस्तु होती है, वह किसी विशेष वर्ग की नहीं होती । इसमें सहज भावाभिव्यक्ति होती है तथा जन–जन की आकांक्षा, और उसके सुख–दुख की कथा निहित होती है ।

लोक कलाएँ केवल शुभ शकुन या ऊपरी सुन्दरता के लिए ही नहीं हैं। उसमें कुछ सीखने, देने की प्रेरणा है, आभ्यंतर सौन्दर्य है । इस कला को एक पीढ़ी दूसरी को देकर पितृ ऋण से मुक्त होती है ।

विभिन्न जातीय पेशे और कारीगरी के नमूने भी लोक कलाएं है । पिता पुत्र को सिखाता है, केवल व्यावसायिक दृष्टि से नहीं, स्वयं को और अपने हुनर को पुत्र में जीवित रखने के भाव से । उसी प्रकार माँ अपनी बेटी में अपनी कला को जीवित पाना चाहती है । यह भावना ही सृष्टि चक्र की नियामक है । इसी के द्वारा कला में जीवन मूल्य सुरक्षित रहते हैं, मान्यताएं सुरक्षित रहती हैं । इनसे समाज सौन्दर्य बोध की दीक्षा पाता है ।

लोककलाओं में कुछ तत्त्व कभी–कभी लगता है कि दब गये हैं और नया स्वरूप उभर आया है पर यह तत्व दबकर फिर कभी न कभी जमीन से निकले बीजांकुर सा फूटता अवश्य है, यदि उसमें जिजीविषा शक्ति है । यही कारण है कि वेश भूषा, आभूषण और कारीगरी के नमूनों में फिर से इतिहास दुहराया जाता है । यह दुहराना भी साभिप्राय होता है, हमें यह बताने के लिए कि नया पुरातन का विरोध नहीं है, उसका विकास है । पुरातन नये को अपनी ऊर्जा देकर आगे बढ़ने का संकल्प देता है । यह सामाजिक विरासत है जो परस्पर प्रतिबद्धता की ओर हमें ले जाती है । सामूहिक मन की कल्पना यहीं साकार होती है। एक व्यक्ति का आनन्द विराट बनकर पूरे समाज का आनन्द बन जाता है । आज आदमी व्यक्ति रूप में भी पूर्णता का बोध नहीं कर पाता, अपने को खण्डित अनुभव करता है, ऐसे में सामूहिक मन की कल्पना के साथ व्यक्ति की अपनी पूर्णता का आभास भी हमारी लोककलाएँ ही करा सकती हैं ।

लोक कलाओं की विशेषता है कि वे अपने मूल स्वरूप की ओर जाती हुई होने पर भी नयी ऊर्जा, नये परिवर्तन ग्रहण करती रहती हैं। इनके द्वारा सामाजिक वर्जनाओं से उत्पन्न तनावों से मुक्ति मिलती है । विवाह आदि अवसरों पर नकटौरी के दिन जो गोपनीय चित्रकारी, पुतला आदि बनाकर और उसी को सम्बोधित करके मुक्त हास परिहास होता है, यह सब इस बात का प्रमाण है । कला में जहाँ भाषा के द्वारा कोई बात कह पाना कठिन होता है वहाँ प्रतीकों का सहारा लिया जाता है पर लोक में भाषा और प्रतीक दोनों ही कुछ अवसरों पर मुखर हो उठते हैं और यही कारण है कि वहाँ कुण्ठाएँ नहीं पनपतीं ।

लोककलाएं हमारे मन की गहराइयों में प्रवेश कर हमारी संवेदनाओं को छूकर उन्हें जगाती हैं और बाहर आने को प्रेरित करती हैं । साथ ही ये हमें सामाजिक संदर्भों से जोड़ती हैं क्योंकि ये स्वयं उन संदर्भों से उपजी और जुड़ी होती हैं जब कि प्रातिभ कला समाज से नहीं व्यक्ति से अधिक जुड़ी होती है, प्रायः समाज से कटी हुई भी ।

विभिन्न व्रत त्योहारों पर जो प्रतीक बनाकर पूजे जाते हैं उसे हम आज का ढकोसला कहकर भले टाल दें पर इन प्रतीकों के साथ जो मन की भावनाएं हैं उन्हें झुठलाना आज भी कठिन है । उदाहरण के लिए अहोई अष्टमी में अहोई माता का चित्रांकन, करवा चौथ में करवा माता का, साँझी के अवसर पर साँझी के चित्र क्रमशः हमारे मन में माँ की ममता जो पुत्र की मंगल कामना के लिए दिन भर निर्जल व्रत करती हैं, पत्नी की सौभाग्य–कामना जो पति की दीर्घायु के लिए दिन भर थूक भी नहीं निगलती, साँझी से कुमारी कन्याओं द्वारा अनुरूप वर की याचना आदि जो भाव जुड़े हैं, वे तो आज भी सत्य है और हमें हमारी आदमियत का बोध कराते हैं ।

लोककलाएँ आदि मानव की आवश्यकताएँ थीं और आज भी उन्हें देखकर यह विश्वास होता है कि कहीं न कहीं आदमी आज भी अपने भीतर उस आदिम रूप में जी रहा है सहज, आवरण हीन जीवन । और यह विश्वास आज के 'अनास्था और बिखराव भरे जीवन के लिए एक बहुत बड़ा संबल है जो अपनी अस्मिता की पहचान कराता है । लोक कलाओं की बुनावट का जो सहज प्रवाह है, निर्बाधता है, वह मनुष्य के मन की अपनी कामना है, जो अपने जीवन में ढाल पाना सामाजिक नियामों से बँधे होने के कारण संभव नहीं हो पाता । कला समूचे संदर्भ से जुड़ी होती है और व्यक्ति उसमें अपने संदर्भों की तलाश कर लेता है, उसकी पूर्णता में अपनी पूर्णता का आभास पाकर संतोष पाता है । लोककलाओं के साथ समाज से जुड़े रहने का जो बोध होता है वह मनुष्य को समाज से जुड़ने का संकल्प देता है ।

लोक कलाएँ माधुर्य और उल्लास का अक्षय स्रोत हैं । रचयिता इनके द्वारा स्वयं को और अपने आस–पास के समाज को अभिव्यक्ति देता है और इस अभिव्यक्ति से प्रफुल्लित होता है। दर्शक उस अभिव्यक्ति से साक्षात्कार करके आनन्द और प्रेरणा प्राप्त करता है । अतः जीवन जितना आवश्यक है उतनी ही आवश्यक हैं लोक कलाएं, क्यों कि इनमें हमारे उल्लास की अनंत संभावनाएं छिपी होती हैं । लोक– कलाएं लोक मानस के रंगीन सपने हैं और सहज भावाभिव्यक्ति के खुले मैदान । इनके द्वारा मानव जी भर जीने की दृष्टि और विश्वास पाता है । ये प्रातिभ कलाओं को नयी रंगत, नये आयाम और नये विषय देती है, इनके स्पर्श से ही कला जीवंत बनती है ।

प्रस्तुत ग्रंथ में कई स्रोतों से सामग्री संकलित की गयी है। कुछ तो सर्वेक्षण से मैंने स्वयं संकलित किया है, कुछ मुझे विभिन्न ग्रंथों से मिली है । बहुत सी नयी बातें मुझे अपने गुरुजनों से तथा वयोवृद्ध पूज्य महिलाओं से निजी बातचीत से मिलीं, इन सबके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ ।

मैं सांस्कृतिक कार्य विभाग के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हूं जिसने लोक संस्कृति के इस पक्ष को प्रकाश में लाने का निर्णय लिया । श्रीमती प्रभा पँवार जी के प्रति कृतज्ञ हूं कि उन्होंने लोकचित्रों के अपने संकलन की सामग्री इस कृति को देकर इसका संयोजन किया । प्रिय बेटी मनीषा, सुनीता और पुत्र विनय को आशीर्वाद देती हूं जिन्होंने इसे पूरा करने में मेरा हाथ बँटाया ।

श्रीमती पंवार की छात्राओं, उनके पुत्र सांगो, पंकज, पुत्रवधू पम्पा को उनके सहयोग के लिए हार्दिक आशीष है । लोक चित्रों के अंकन, संकलन के लिए श्रीमती प्रभा भार्गव, श्रीमती उमाशशि मिश्रा एवं उनकी माताजी, कुमारी सरोज भार्गव श्रीमती शशी देव, श्रीमती इन्द्रा जोशी के प्रति हम कृतज्ञ हैं ।

इन व्रतों के विधि विधान की परम्परा का परिचय देने के लिए

अपनी सास जी श्रीमती प्रभु देवी, श्रीमती विद्यावती मिश्रा, श्रीमती यमुना अग्निहोत्री, श्रीमती शिवकली पाण्डेय, श्री योगेश प्रवीन के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूं ।

स्व. श्री अमृतलाल नागर जी की पुण्य स्मृति को नमन करती हूं जो मुझे बार–बार प्रेरणा देते रहे कि तुम लोक अध्ययन के आधार पर व्रत पर्व त्योहारों पर लिखो ।

मैं अपने आदरणीय गुरु डॉ. विद्यानिवास मिश्र जी के प्रति श्रद्धावनत हूं जिनके निबन्धों ने मुझे व्रत–पर्व–त्योहारों की भावभूमि और उनमें व्यक्त अभिप्रायों को समझने की भारतीय चिन्तनपरक दृष्टि पाने की प्रेरणा दी ।

मुझे वाचिक परम्परा से कथाओं, गीतों, विधि–विधानों की जो विपुल सामग्री प्राप्त हुई है उसे एक विस्तृत ग्रंथ में समग्र रूप से देने का आगे प्रयास करूँगी ।

मुझे विश्वास है कि मेरे इस लघु प्रयास से व्रत अनुष्ठान करने वालों को पुनर्विश्वास प्राप्त होगा और उसकी उपेक्षा करने वालों को आमंत्रण मिलेगा अपने खोये हुए निजत्व को पाने के लिए, अपने देश की व्रतोपासना और उत्सवप्रियता को अपनी व्रतोपासना और उत्सव प्रियता बनाने के लिए । मैं अपने को कृतार्थ मानूंगी यदि कोई मुझे अतिरिक्त जानकारी देगा या मेरी कोई भूल सुधारेगा। क्योंकि जो भी सुधार पाठक सुधीजन करेंगे उससे मुझे आशा बँधेगी कि अभी भारत आत्मविस्मृति का पूरी तरह शिकार नहीं हुआ है ।

भारत की उस दूब जैसी अप्रतिहत जीवन शक्ति में मैं पूरी तरह विश्वास करती हूं और इसीलिए मैं तथाकथित आधुनिकता की चकाचौंध से अपने को हटाकर अपनी परम्परा की जीवन्त आचार पद्धति का एक अंश, असमर्थ भाषा में ही सही, सामने रखने का साहस कर रही हूं ।

विद्याविन्दु सिंह
45, गोखले विहार मार्ग,
लखनऊ

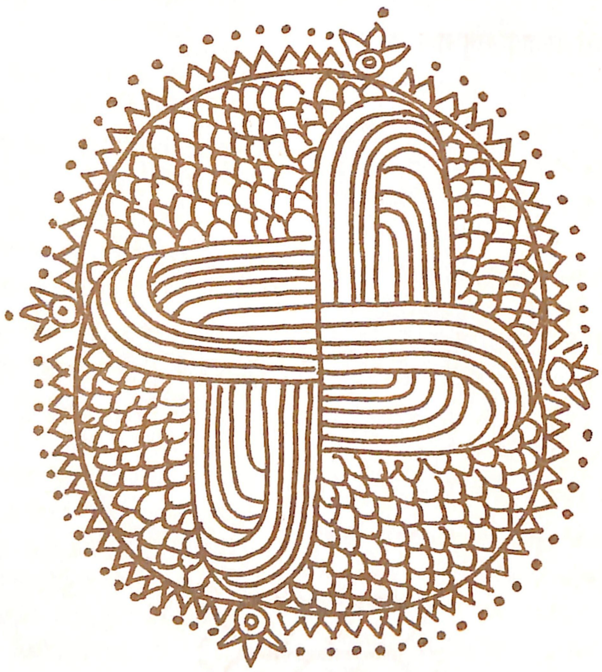

अनुक्रम

क्रम सं.	विवरण	पृष्ठ सं.
1–	होली	1
2–	बुढ़वा मंगल (होली के बाद का पहला मंगल)	1
3–	होली दूज (भैया दूज)	2
4–	शीतला सप्तमी	2
5–	शीतला अष्टमी	2
6–	पाप मोचनी एकादशी	3
7–	अरुन्धती व्रत	3
8–	बासन्ती नवरात्र प्रारम्भ	4
9–	गणगौर	5
10–	रामनवमी	5
11–	कामदा एकादशी	6
12–	हनुमान जयन्ती	6
13–	झूले लाल/चैती चाँद	6
14–	मेष संक्रान्ति/सत्तू संक्रान्ति	6
15–	जगन्नाथ जी का सोमवार	7
16–	बरूथिनी एकादशी	7
17–	अक्षय तृतीया	7
18–	गंगा सप्तमी	7
19–	मोहिनी एकादशी	7
20–	नरसिंह चतुर्दशी	7
21–	सत्यविनायक	8
22–	बुद्ध पूर्णिमा	8
23–	महावीर का मेला	8
24–	अपरा एकादशी	8
25–	वटसावित्री व्रत	9
26–	गंगा दशहरा	9
27–	निर्जला एकादशी या भीमसेनी एकादशी	9
28–	योगिनी एकादशी	10
29–	रथयात्रा	10
30–	देवशयनी एकादशी	11
31–	पद्मनाभा एकादशी	11
32–	गुरु पूर्णिमा, व्यास पूजा, आषाढ़ी पूर्णिमा	11
33–	कोकिला व्रत	11
34–	मंगला गौरी तथा शिव जी के व्रत	11
35–	हरियाली तीज	12
36–	नाग पंचमी	12
37–	शीतला सप्तमी	12
38–	कजरी नवमी, जवारा नवमी, नेवला नवमी	13
39–	कामदा एकादशी	13
40–	पुत्रदा एकादशी	13
41–	रक्षा बन्धन	13
42–	कजली तीज	14
43–	सिद्ध विनायक पूजा, गणेश चतुर्थी, कलंकी चौथ	14
44–	बहुरा चौथ	14
45–	गूँगा पंचमी, गूँगा नवमी	16
46–	हलषष्ठी(हरछठ)	16
47–	श्रीकृष्ण–जन्माष्टमी	17
48–	नन्दोत्सव	18
49–	अजा एकादशी	18
50–	गाजवीज पर्व	18
51–	ओक दुआस या गोवत्स द्वादशी	19
52–	हरतालिका तीज व्रत	19
53–	भादों का बड़ा इतवार	20
54–	ऋषि पंचमी	20
55–	संतान सप्तमी/दुबड़ी सातें	20
56–	राधा अष्टमी	21
57–	दशावतार	21
58–	वामन एकादशी	21
59–	वामन द्वादशी	21
60–	गोत्रिरात्रि	21
61–	अनन्त चतुर्दशी	21
62–	रम्भा चतुर्दशी या कदली व्रत	22
63–	उमा महेश्वर व्रत	22
64–	साँझी	22

क्रम सं	विवरण	पृष्ठ सं.
65–	पितृ पक्ष प्रारम्भ	23
66–	महालक्ष्मी व्रत/जिउतिया/जीवित पुत्रिका	23
67–	मातृनवमी	24
68–	इन्दिरा एकादशी	25
69–	पितृ विसर्जन, महालय	25
70–	मामुलिया	25
71–	शारदीय नवरात्र	25
72–	दुर्गा षष्ठी	25
73–	दुर्गाष्टमी	26
74–	दुर्गानवमी, दुर्गापूजा	26
75–	विजय दशमी (दशहरा)	26
76–	पापांकुशा एकादशी	27
77–	शरद् पूर्णिमा/कोजागर	27
78–	कार्तिक स्नान	27
79–	करवा चौथ	28
80–	अहोई अष्टमी/अशोक अष्टमी	28
81–	रमा एकादशी, तुलसी विवाह एकादशी	28
82–	धनतेरस, धन्वन्तरि जयन्ती	29
83–	नरक चतुर्दशी, रूप चौदस, हनुमान जयंती	29
84–	दीपावली	30
85–	अन्नकूट, गोबर्द्धनपूजा	30
86–	चिरैया गौर	31
87–	यम द्वितीया, भैया दूज	31
88–	सूर्य षष्ठी या डाला छठ	31
89–	संतान सप्तमी	32
90–	नवान्न	32
91–	काल भैरव अष्टमी	33
92–	गोपाष्टमी	33
93–	अक्षय नवमी/आँवला नवमी	33
94–	देवोत्थान एकादशी	34
95–	बैकुण्ठ चतुर्दशी	35
96–	कार्तिक पूर्णिमा, त्रिपुरी पूर्णिमा, तुलसी विवाह	35
97–	भीष्म पंचक/पंच भद्रम	35

क्रम सं	विवरण	पृष्ठ सं.
98–	पिड़िया व्रत/कात्यायनी व्रत	35
99–	उत्पन्ना एकादशी	36
100–	श्री पंचमी/राम विवाह	36
101–	मोक्षदा एकादशी	36
102–	अग्रहायण पूर्णिमा/दत्तात्रेय जयन्ती	37
103–	सफला एकादशी	37
104–	पुत्रदा एकादशी	37
105–	सुरूपा द्वादशी	37
106–	ईशान व्रत	38
107–	पौष पूर्णिमा स्नान	38
108–	पौष मास के सभी रविवार (पूस इतवार)	38
109–	संकट चौथ/गणेश चौथ	39
110–	षटतिला एकादशी	39
111–	जया एकादशी	40
112–	मौनी अमावस्या	40
113–	मकर संक्रान्ति	40
114–	बसंत पंचमी	40
115–	शीतला छठ	40
116–	भीष्म अष्टमी	41
117–	माघी पूर्णिमा	41
118–	जानकी नवमी	41
119–	विजया एकादशी	41
120–	महाशिवरात्रि	41
121–	आमलकी एकादशी / रंगभरनी एकादशी	42
	अन्य व्रत, पर्व, त्यौहार	42
122–	सोमवती अमावस्या	42
123–	पुरुषोत्तम मास/मलमास	42
124–	प्रदोष व्रत	42
125–	सूर्यग्रहण/चन्द्र ग्रहण	42
126–	कुम्भ/ अर्ध कुम्भ/महाकुम्भ	43
127–	कपिला षष्ठी	43
128–	रंगीन चित्र	45-64

होली

फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा की रात में होली जलायी जाती है और चैत्र बदी प्रथमा को होली का उत्सव मनाया जाता है । यह आदिम उत्सव है जो ऋतु मंगल की भावना से प्रकृति के प्रति साहचर्य का भाव व्यक्त करने के लिए मनाया जाता है।प्रकृति के नये उल्लास के साथ लोकमन अपना उल्लास मिला देता है।

होलिका में डालने के लिए गोबर के बल्ले बनाये जाते हैं जितने पुरुष सदस्य घर में होते हैं उनके प्रतीक बल्ले प्रति मनुष्य के लिए पाँच के हिसाब से बनते हैं । इन बल्लों को घर की चारपाइयों के पुराने बाध (रस्सी) से नापकर उसी रस्सी के टुकड़ों में माला से गूंध लेते हैं । एक सूरज, एक चॉद, और छोटी-छोटी डिबियॉ बनती है जिसमें ढूंढ़-ढूंढ़ कर सिर का जुऑं, कपडों का जुऑं (चीलर) चारपाई का खटमल आदि बन्द कर देते हैं। बच्चे, बड़े, बूढ़े सभी को उबटन लगाना आवश्यक है। उबटन की लीझी (मैल) को भी एक डिबिया में बन्द करते हैं । यह सारी डिबियाँ, बल्ले, चाँद सूरज के प्रतीक होलिका में जलने हेतु डालते हैं जिससे समस्त आधि-व्याधि और रोगाणु होलिका में जल जायें। चाँद सूरज और पुरुष के प्रतीक बल्ले जलाये जाते हैं, उन्हें नया करके उनके दीर्घायु की कामना से कि जिस प्रकार प्रहलाद होलिका से बचकर निकल आये उसी प्रकार यह भी हर आपदा से बचकर निकल आयें । नारी के प्रतीक बल्ले नहीं जलाये जाते क्योंकि नारी ही अनुष्ठानों के मूल में है और वह अपनी दीर्घायु की कामना की अपेक्षा पति और पुत्र के कन्धों पर अन्तिम यात्रा के लिये जाने को ही अपना परम सौभाग्य मानती है।कहीं-कहीं स्त्रियाँ होलिका के स्थान पर बैठकर हल्दी चावल आदि से पूजन करती हैं।

चैत्र प्रतिपदा को धुलेड़ी होती है । होली की धूल एक दूसरे पर उड़ा कर शुभकामना की जाती है । होली जलाते समय और धूल उड़ाते समय भी समवेत स्वर में लोग कहते हैं-

होली माई दुया असीस ।
लरिकै जीयें लाख बरीस ।।

पुराण में कहा गया है - होलिका हम आप की पूजा व नमस्कार करते हैं । हमारा अर्घ्य स्वीकार करें । हमें पाप मुक्त करें । हमें आयु दें, सम्पत्ति दें । होली की पूजा करके परिक्रमा करते समय आग में नारियल, गेहूं, जौ आदि के डन्ठल फेंकते हैं और भुने अन्न का प्रसाद बँटता है ।

दूसरे दिन धूलि उड़ाने के बाद रंग खेलकर लोग स्नान करते हैं। नये उजले वस्त्र पहनते हैं । तीसरे प्रहर से होली मिलन प्रारम्भ होता है । लोग अबीर, गुलाल लगा कर परस्पर गले मिलते हैं । यथाशक्ति गुलाब जल और इत्र, मिष्ठान्न, लौंग, इलाइची, सौंफ, गरी आदि से सत्कार किया जाता है ।

फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को महाप्रभु चैतन्य का जन्मदिन भी मनाया जाता है और फूलों के झूले में उनका चित्र रखकर लोग जुलूस निकालकर भावोन्माद में हरि कीर्तन करते हुए चलते हैं। होली से सम्बन्धित कई लोककथाएँ, पुराण कथाएं हैं।होली के अवसर पर भित्ति चित्र और भूमि पर विविध चौक पूरेजाते हैं।(रंगीन चित्र सं.-1, 2)

बुढ़वा मंगल

होली के बाद जो पहला मंगल आता है उस दिन बुढ़वा मंगल का त्यौहार मनाया जाता है । कहीं-कहीं इस दिन हनुमान जी को "रोट" (मीठे मालपुवे) चढ़ते हैं । यह उत्सव बनारस में विशेष रूप से मनाया जाता है । बुढ़वा मंगल के दिन गंगा में बजरे सजकर तैयार होते हैं और नागरिक अलग-अलग बजरों पर चैती और चैता गीतों का गायन करते हैं । श्रोतागण भी साथ-साथ दूसरे बजरों पर चलते हैं ।इसके अतिरिक्त गंगा तट पर भी श्रोताओं और दर्शकों की भारी भीड़ जमा होती है ।

कहीं-कहीं होली से लेकर बुढ़वा मंगल तक होली का उत्सव रहता है । (रंगीन चित्र सं.-3)

स्वस्तिक चौक

होली दूज

यह दीपावली के बाद की भ्रातृद्वितीया (भैयादूज का टीका) की भाँति ही मनाया जाता है । बहने भाइयों को टीका करती हैं तथा भाई बहन परस्पर एक दूसरे के लिए शुभकामनाएँ करते हैं ।

दीवालों पर और भूमि पर चित्रांकन किया जाता है । भैया दूज के दिन भाई–बहन के अमिट स्नेह के सम्बन्ध में लोक कथाएँ कही जाती हैं कि किस तरह बहन ने अपने

होली दूज

प्राण संकट में डालकर भी भाई की रक्षा की । जो बहनें भाई–भाभी से मिल नहीं पातीं वे घर के द्वार के पास गेरू से भाई–भावज के प्रतीक दो पुतलियाँ लिखकर रोली अक्षत से पूजा करके पकवानों का भोग लगाकर फिर द्वार पूजती हैं । प्रवेश द्वार के नीचे गोबर से चौकोर वेदी लीपकर चार पुतलियाँ चारों कोनों में लिखती हैं, एक पुतली बीच में। गृहस्थी के उपकरण भी उसमें बनाये जाते हैं।

इस भाई दूज में भाई को गुलाल का टीका लगता है । मूसल उठाकर बहन कहती है– "जो हमारे भाई को देखकर जले–बरे, उसका मुंह तोडूँ" इस तरह बहन का दिया रक्षा कवच है यह पर्व ।

शीतला सप्तमी

चैत्र में कृष्ण पक्ष की सप्तमी को शीतला देवी का पूजन किया जाता है तथा व्रत रखा जाता है । रात में विविध पकवान बनते हैं और दूसरे दिन बासी पकवान चढ़ाकर वही खाया जाता है । चैत्र की शीतला सप्तमी से आषाढ़ तक हर कृष्ण पक्ष की सप्तमी को देवी का पूजन किया जाता है ।

चावल और हल्दी के ऐपन से शीतला देवी का थापा द्वार के

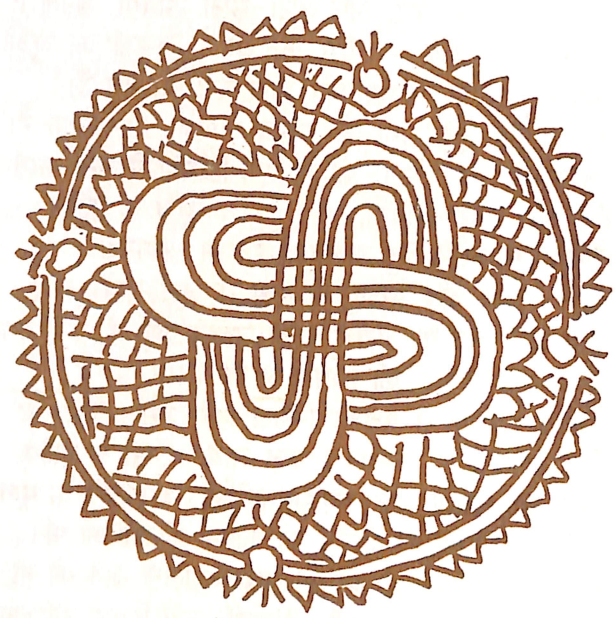

मंङ्गल चौक

दोनों तरफ लगाया जाता है । रसोईघर की दीवाल पर ऐपन की पाँच धार उंचाई से डाली जाती है जो नीचे तक अविच्छिन्त्र आती है। यह दीर्घायु की कामना के लिये होता है । (रंगीन चित्र सं.–4)

शीतला अष्टमी

"आठों" देवी का पूजन चैत्र शुक्ल अष्टमी को किया जाता है। इसमें बसियौरा, थापा, और पूजन का विधान है । चौराहा पूजकर मंदिर जाती है बासी पकवान दही, पान से

पूजन कर वापस लौटकर आने पर घर का द्वार पूजा जाता है द्वार पर ऐपन के थापे लगाकर तब फिर भीतर प्रवेश किया जाता है ।

फूल, लौंग, हल्दी की धार आदि देवी को चढ़ाया जाता है। माता बाल-बच्चों को शीतल, सुखी रखें, यह प्रार्थना की जाती है । इसीलिए इस दिन ताजा गरम भोजन या पेय नहीं लिया जाता । देवी के गीत पचरा आदि गाये जाते हैं। कहीं-कहीं कुंआरी लड़कियाँ फूल लोढ़ने (चुनने) जाती हैं और काली के चौरा पर फूल तथा हल्दी की धार चढ़ाती हैं । शीतला माता की सवारी गधे की है, एक हाथ में सूप है, एक में कलश है। माता को गुड़हल का फूल चढ़ाया जाता है । शीतला (चेचक) के प्रकोप से यह व्रत रक्षा करता है ।

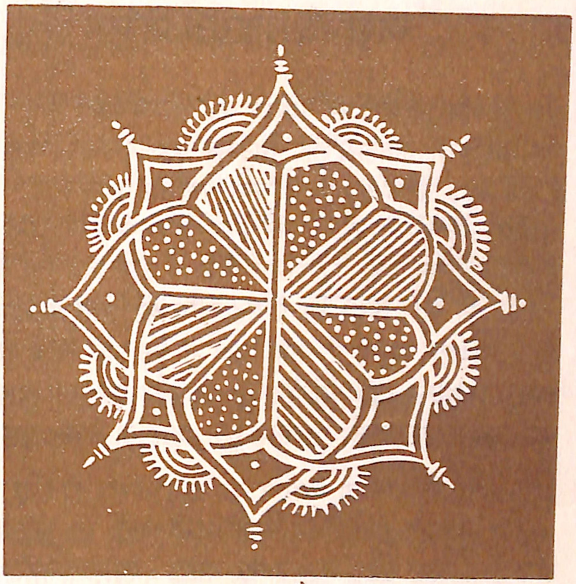

मङ्गल चौक

पापमोचनी एकादशी

चैत्र मास के कृष्ण पक्ष में यह एकादशी पड़ती है । इसके बारे में भविष्योत्तर पुराण में कथा मिलती है तथा लोक कथाएँ भी। इन कथाओं में बार-बार यही उल्लेख होता है कि इस एकादशी को करने से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं ।

ऐपन से भगवान के चरण बनाये जाते हैं । इसमें मेधावी ऋषि का भुजघोषा अप्सरा के आकर्षण में तप भंग होने की कथा है। मोह भंग होने और काल का ज्ञान होने पर पाप मुक्त होने के लिये दोनों ने इस एकादशी का व्रत किया । तभी इसका नाम पापमोचनी एकादशी पड़ा ।

अरुन्धती व्रत

यह चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से तृतीया तक होता है । व्रती नदी, तालाब, सरोवर में स्नान कर संकल्प लेते हैं । द्वितीया को धान पर कलश स्थापित करके गणेश पूजा के बाद ध्रुव, अरुन्धती वशिष्ठ की प्रतिमा का पूजन किया जाता है । तृतीया को शिव पार्वती का पूजन करके माता अरुन्धती से धन-पुत्र की कामना की जाती है । कथा है कि सप्त ऋषियों में वशिष्ठ को स्थान देने की बात जब आई तो उन्होंने कहा कि मैं अरुन्धती के बिना अधूरा हूँ। पत्नी को साथ में स्थान मिलने पर ही उन्होंने पद ग्रहण किया । देवी अरुन्धती मुनि कर्दम की पुत्री तथा कपिल मुनि की बहन थीं। वे अखण्ड सौभाग्यवती पतिव्रता थीं। यह व्रत करने से वैधव्य का दुख नहीं भोगना पड़ता, ऐसा विश्वास है ।

इस व्रत में स्त्रियाँ पातिव्रत का और पुरुष एक पत्नीव्रत का संकल्प लेते हैं, जिससे अगले जन्म में वैधव्य या विधुर न होना पड़े ।

अरुन्धती व्रत

बासन्ती नवरात्र प्रारम्भ

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से नवरात्र का प्रारम्भ होता है । 'धर्मशास्त्र का इतिहास' के अनुसार ब्रह्म पुराण में कहा गया है कि ब्रह्मा ने चैत्र मास शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन सूर्योदय के समय संसार का निर्माण किया और उसी दिन से काल गणना का शुभारम्भ हुआ । उसी दिन सब कलुषों (पापों) को नाश करने वाली महाशक्ति का व्रत प्रारम्भ होता है । भविष्य पुराण में कहा गया है कि यह तिथि ब्रह्मा द्वारा सर्वश्रेष्ठ तिथि घोषित हुई है और इसे सर्व प्रथम पद (स्थान) मिला है । अतः इसे प्रतिपदा कहा जाता है ।

इसी तिथि से बासन्ती नवरात्र का व्रत प्रारम्भ होता है, कलश स्थापना होती है और दुर्गा सप्तशती का पाठ प्रारम्भ होता है । कुछ लोग नवरात्र भर नवाह्न पारायण करते हैं । प्रारम्भ इसी प्रतिपदा को करते हैं । रामचरितमानस का किसी न किसी रूप में पाठ होता है ।

चैत्र प्रतिपदा को वर्ष के स्वामी की पूजा करने, वर्षफल सुनने और नीम की पत्ती खाने का विधान है । यह प्रतिपदा जिस ग्रह के दिन पड़ती है उस वर्ष का राजा या स्वामी वही ग्रह होगा । जैसे सोमवार को पड़े तो वर्ष का स्वामी सोम होगा । वर्ष के सारे सुख-दुःख ग्रह राजा पर निर्भर करते हैं ।

शक्ति की उपासना के साथ ही कहीं-कहीं ब्रह्मा और काल देवता की पूजा भी होती है । उसी के साथ कुल देवता, ग्राम देवता अन्य शास्त्रीय देवता तथा ऋषियों मुनियों की और प्रकृति के अंग नदी, तालाब, पर्वत, वृक्ष की भी पूजा कहीं-कहीं पर की जाती है । इसी शुभ दिन पर कहते हैं कि भगवान राम ने बालि की हत्या की थी । यह तिथि राम और शक्ति दोनों की पूजा के लिए महत्त्वपूर्ण है । नवरात्र में कन्या पूजन करके कन्याओं को भोजन कराया जाता है ।

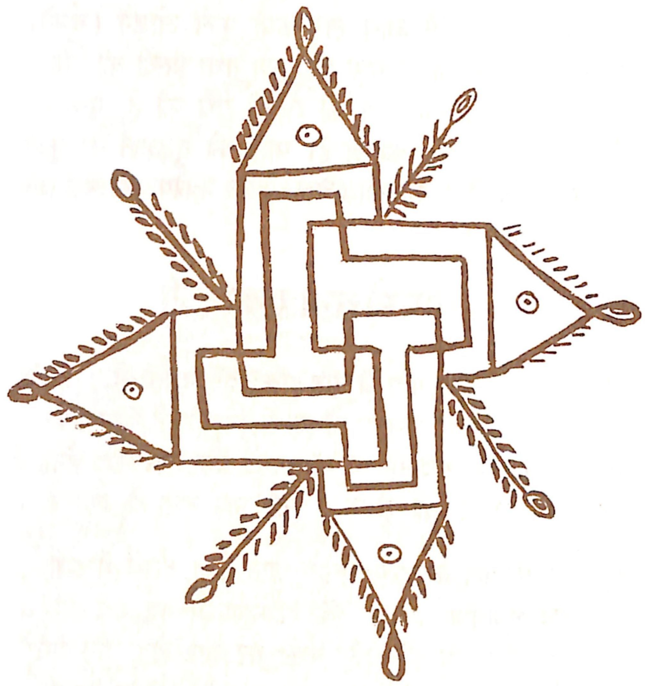

पूजा चौक

देवी के मन्दिर में दिया जाने वाला आलेखन

गणगौर

यह चैत्र शुक्ल तृतीया को मनाया जाने वाला व्रत–त्यौहार है। बुन्देलखण्ड और ब्रज क्षेत्र में इसे मनाने का रिवाज है। यह राजस्थान का प्रमुख पर्व है । इसमें गोबर, बालू या मिट्टी की गौर बनाकर पूजन किया जाता है।सौभाग्य चिह्न सिन्दूर, बिन्दी, चूड़ी, बिछुआ, रंग, लाल–पीला कपड़ा तथा अन्य पूजन सामग्री और भोग चढ़ाया जाता है । इस व्रत में गणेश, गौरी और शिव की पूजा करके अक्षय सौभाग्य का वर माँगा जाता है ।

लोक कथाओं के अनुसार इसी तिथि को पार्वती जी ने स्त्रियों को सौभाग्य बाँटा था । गरीब स्त्रियाँ जो जैसे तैसे उठकर दौड़कर देवी माँ के पास पहुंच गयीं उन्हें सब सुहाग दे डाला। सवर्ण स्त्रियाँ सज बनकर पहुंचीं तो धोबन से सुहाग दिलवाया। धोबन घाट पर थी सबसे पहले पहुंची थी इसीलिए उसे सबसे अधिक मिला था । आज भी धोबन से सुहाग लेने की परंपरा है । शिव पार्वती की कथाएँ इस व्रत में कही जाती है ।

रामनवमी

चैत्र शुक्ल नवमी को भगवान श्रीराम का जन्मोत्सव मनाया जाता है। इस दिन व्रत रखकर श्री रामचन्द्र जी का गुण कीर्तन किया जाता है। मंदिरों में चैत्र की प्रतिपदा से ही राम–कथा प्रारम्भ हो जाती है, और बराबर रामनवमी तक होती रहती है । जन्म के बधाये बजते हैं, सोहर गीत गाये जाते हैं, चरुआ सतिया तथा अन्य चित्र बनते हैं झाँकियाँ सजती हैं।

अयोध्या में भव्य आयोजन तथा अयोध्या से सम्बद्ध मंदिरों में भी, जो देश के कोने– कोने में हैं, विशेष आयोजन होते हैं ।

इसमें धनिया की पंजीरी और चरणामृत का भोग लगाकर प्रसाद बँटता है । बाल रूप श्रीराम को पालने में झुलाया जाता है। (रंगीन चित्र सं.–5)

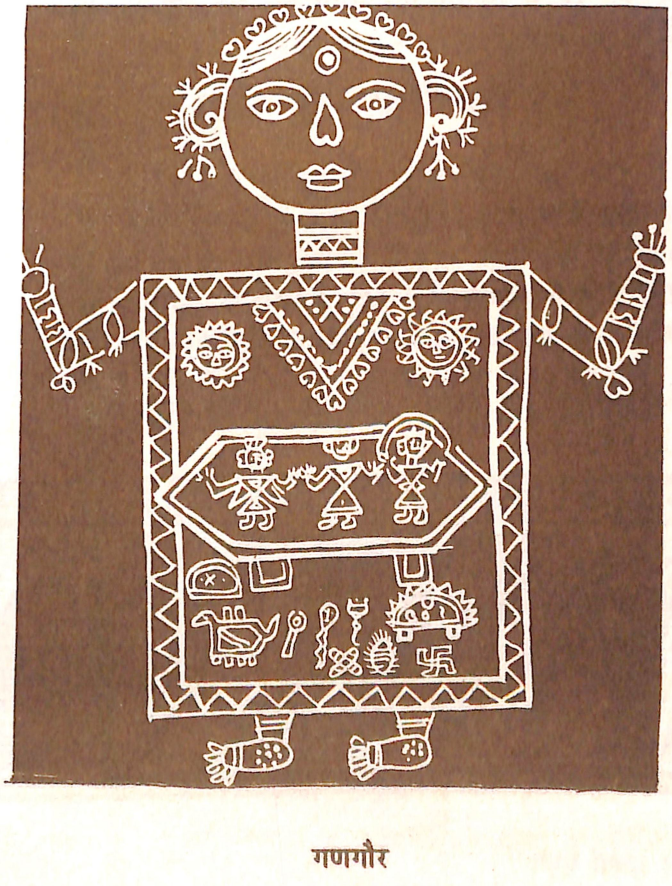

गणगौर

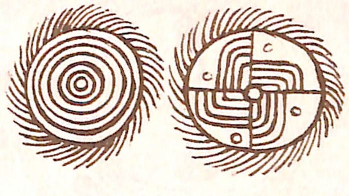

चरुआ

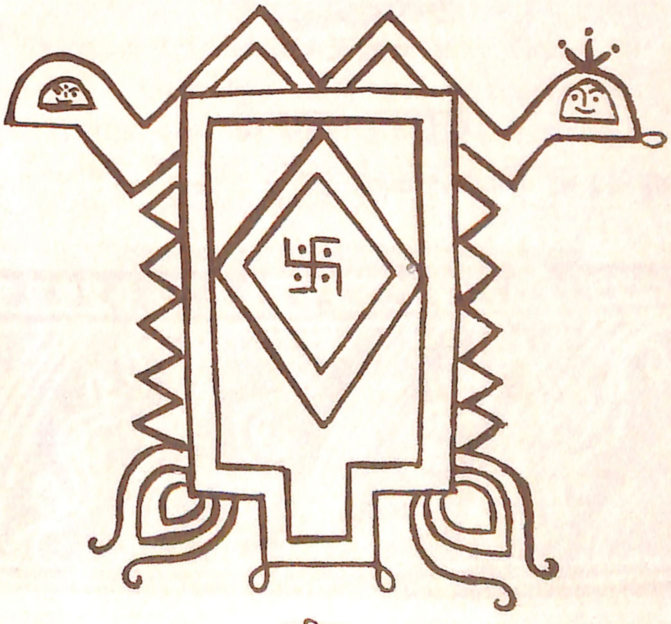

सतिया

कामदा एकादशी

यह चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में होती है। इसका माहात्म्य वाराह-पुराण में वर्णित है। यह व्रत किसी कामना की पूर्ति या भगवत्भक्ति प्राप्ति के निमित्त किया जाता है ।

इस दिन ललित गंधर्व और उसकी पत्नी ललिता की कथा कही जाती है । एक दिन गाते समय पत्नी की स्मृति आने से गन्धर्व के ताल स्वर में विघ्न पड़ गया । राजा पुण्डरीक ने उसे राक्षस हो जाने का शाप दे दिया । पति की दुर्दशा से ललिता दुखी होकर विचरण करने लगी । विन्ध्याचल के शिखर पर ऋष्यमूक ऋषि के उपदेश से उसने यह व्रत किया जिसके प्रभाव से ललित को पुनः गन्धर्व रूप प्राप्त हुआ ।

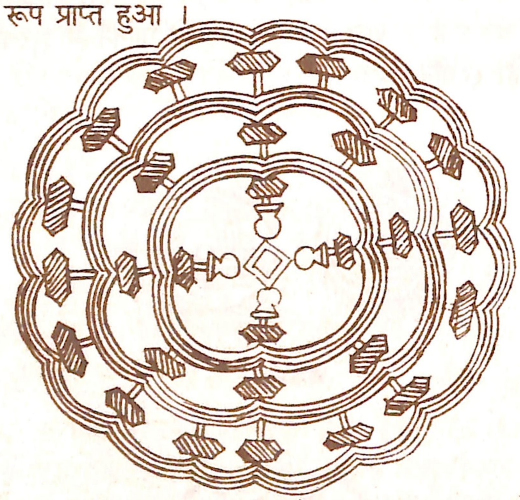

एकादशी चौक

हनुमान-जयन्ती

यह चैत्र की पूर्णिमा को मनायी जाती है । हनुमान जी एकादश रुद्र हैं, महादेव जी का अवतार हैं । इस दिन इनके जन्म के सम्बन्ध में कथा कही जाती है । जब राजा दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया तो यज्ञ में उन्हें तीन पिण्ड प्राप्त हुए, जिन्हें इन्होंने अपनी रानियों को खाने के लिए दे दिया, किन्तु एक रानी ने उसे कहीं ऐसी जगह रख दिया जहाँ से उसका कुछ भाग चील उठा ले गई और ले जाकर उसे अंजना के पास गिरा दिया । अंजना ने उसे खा लिया और उसी के प्रभाव से हनुमान जी का जन्म हुआ । इस तिथि को हनुमान जी का कीर्तन, सोहर गाकर उनकी पूजा की जाती है । हनुमान मंदिरों में सजावट की जाती है ।

झूले लाल/चैती चाँद

उत्तर प्रदेश में निवास करने वाले सिन्धी लोग यह उत्सव बड़े धूमधाम से मनाते हैं । झूले लाल कृष्ण का ही एक नाम है ।

झूले लाल वरुण के भी अवतार माने जाते हैं । सिन्धी लोग बहुत प्राचीनकाल से वरुण के उपासक हैं क्योंकि वरुण समुद्र के देवता हैं और सिन्धु देश समुद्र के तट पर है ।

मेष संक्रान्ति/ सत्तू संक्रान्ति

चैत्र मेष संक्रान्ति को सत्तू और गुड़ कुमारियों को खिलाया जाता है । मिट्टी की सुराही, ककड़ी, पंखी आदि का दान किया जाता है । इसके बाद ही घड़े का पानी पीने का विधान है । ऋतु परिवर्तन के इस संक्रान्ति माह में सत्तू का भोजन स्वास्थ्य वर्द्धक होता है ।

कहीं-कहीं बैसाख अमावस्या को सत्तू संक्रान्ति मनाते हैं ।

देहरी पर बनाया जाने वाला ऐपन

जगन्नाथ जी का सोमवार

जो लोग जगन्नाथ जी की यात्रा करने जाते हैं वे बेंत की छड़ी साथ में ले आते हैं । यह छड़ी अनाज के भण्डार में खोंस दी जाती है जिससे धन धान्य से घर भरा रहे । इसी छड़ी की पूजा बैसाख के प्रथम सोमवार को होती है । कहीं-कहीं चैत्र के चारों सोमवार को होती है। यह पूजा पीढ़ी दर पीढ़ी होती है, जिसके यहाँ कोई जगन्नाथ जी के धाम हो आता है । व्रत रखकर दोपहर को लकड़ी के पाटे पर जगन्नाथ जी के पट और जगन्नाथ जी बनाकर पूजा होती है । छड़ी को धोकर उसका जल एक बरतन में रखकर उसी में छड़ी को खड़ा करके पूजते हैं और कथाएँ कही जाती हैं । (रंगीन चित्र सं.-6)

बरूथिनी एकादशी

बरूथिनी एकादशी बैशाख मास के कृष्ण पक्ष में पड़ती है। इस एकादशी - व्रत का फल अक्षय बताया जाता है ।

अक्षय तृतीया

बैशाख कृष्ण - पक्ष की तृतीया को यह पड़ती है ।

त्रेता-युग का भी इसी दिन आरम्भ हुआ था । ब्राह्मण को इसी दिन जल भरा कलश, पंखा और खड़ाऊँ, जूता दान दिया जाता है जिससे पितरों को गरमी में स्वर्ग में यह चीजें मिल जाँय। गरमी इसी दिन से आरम्भ हो जाती है। इसी दिन गौरी की अन्तिम पूजा भी होती है । सधवा स्त्रियाँ और कन्याएँ इस दिन गौरी की पूजा करती हैं और मिष्ठान्न फल और भीगे हुए चने बाँटती हैं ।

यह विश्वास है कि इस दिन का किया हुआ व्रत, हवन, दान का पुण्य अक्षय होता है । इस दिन को परशुराम जी का जन्म दिवस माना जाता है । कहते हैं कि त्रेता युग का आरम्भ इसी दिन से हुआ था । बद्रीनाथ के पट इसी तिथि को खुलते हैं, इसलिए इसीदिन बद्रीनाथ की प्रतिमा स्थापित कर पूजा की जाती है । गंगा स्नान तथा दान का भी विशेष महत्त्व है । पितरों का तिल से तर्पण और पिण्डदान भी इस दिन करते हैं।

गंगा सप्तमी

बैशाख शुक्ल सप्तमी को गंगा जयंती मनाते हैं । ब्रह्म पुराण में कथा है कि इस दिन राजा जह्नु ने क्रोध में गंगा जी को पान कर लिया था, फिर दाहिने कान के रन्ध्र से इन्हें निकाल दिया था । इसीलिए गंगा का नाम जाह्नवी पड़ा । इस दिन गंगा की पूजा की जाती है ।

मोहिनी एकादशी

मोहिनी एकादशी बैशाख मास के शुक्ल-पक्ष में पड़ती है। इसके सम्बन्ध में कर्मपुराण में यह कथा कही गई है कि सरस्वती नदी के तट पर भद्रावती नगरी में द्युतिमान नामक राजा के कई पुत्र थे । एक पुत्र का नाम भी धृष्टबुद्धि था और वह पापाचारी भी था। पिता ने उसे घर से निकाल दिया तो वन में रहते हुए भी चोरी करता, जानवरों को मार कर खाता था । एक दिन वह कौण्डिन्य मुनि के आश्रम में पहुंच गया। ऋषि स्पर्श से उसका पाप जाता रहा । ऋषि ने बैसाख शुक्ल एकादशी व्रत का उपदेश दिया कि इसके प्रभाव से बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं ।

उसने उस एकादशी का व्रत किया और उसके प्रभाव से निर्मल मति हो गया ।

नृसिंह चतुर्दशी

बैसाख शुक्ल चतुर्दशी को भगवान नृसिंह की जयंती मनायी जाती है । यह प्रदोष व्यापिनी चतुर्दशी को ही करना चाहिए । स्कन्द पुराण में इसका वर्णन है । हरिण्यकशिपु से प्रहलाद को बचाने के लिए खम्भा फाड़कर भगवान विष्णु नृसिंह रूप में अवतरित हुए थे। नृसिंह शक्ति और पराक्रम के प्रतीक हैं । इस व्रत को करने से शक्ति और अभय मिलता है, पापनाश होता है और भगवत् भक्ति मिलती है। (रंगीन चित्र सं.-7)

देहरी पर बनाया जाने वाला ऐपन

सत्यविनायक

बैशाख-पूर्णिमा को गणेश जी की पूजा की जाती है । सत्यविनायक गणेश का दूसरा नाम है । ब्रह्मा जी ने नारद से इस व्रत के बहुत ज्यादा माहात्म्य बताये हैं । इस दिन विप्र सुदामा की कथा कही जाती है जिन्हें श्रीकृष्ण जी ने उनके तीन मुट्ठी चावल के बदले त्रिलोक का राज्य दे दिया था । श्री कृष्ण जी ने सुदामा जी को सत्य विनायक का व्रत करने को कहा था। कहते हैं कि इस व्रत के प्रभाव से ही सुदामा का घर धन ऐश्वर्य से भर गया था । (रंगीन चित्र सं.-8)

बुद्ध पूर्णिमा

बैशाख की पूर्णिमा को गौतम बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था। गौतम बुद्ध विष्णु के अवतार हैं । इस दिन व्रत उपवास करके बुद्ध चरित और उनके उपदेशों का मनन-श्रवण किया जाता है।

महावीर का मेला

ज्येष्ठ मास के पहले मंगल को महावीर जी का मेला लखनऊ का विशिष्ट मेला है । इस दिन यहाँ स्थानीय सार्वजनिक अवकाश होता है । अलीगंज स्थित महावीर जी के मंदिर में विशाल मेला लगता है । जनश्रुति है कि इसीदिन महावीर जी की मूर्ति का प्राकट्य हुआ था । इस मेले का सम्बन्ध पहले केवल अलीगंज के हनुमान मंदिर से था पर अब सभी हनुमान मंदिरों में यह मेला होने लगा। अलीगंज में भी दो हनुमान मंदिर हैं, एक पुराना, दूसरा नया । कहते हैं कि पुराना नवाबी के जमाने का है जिसे बेगमों ने बनवाया था तथा नया "जाट मल" ने बनवाया था, जो आज प्रचलित है । पुराने की भी मरम्मत हो गयी है पर प्रतिष्ठा नये की अधिक है । जेठ के चारों मंगल को मेला लगता है, छाछी कुँआ वाला मेला केवल बड़े मंगल को लगता है । जनश्रुति है कि यहाँ तुलसीदास जी आये थे । अयोध्या से अभी तक इस मंदिर का सम्बन्ध है ।

अलीगंज का यह मेला दो जगह लगा करता था, एक तो अलीगंज के हनुमान मंदिर पर दूसरा छाछी कुंआ पर । जनश्रुति यह है कि मंदिर मलिका किश्वर (वाजिद अली शाह की माता) का बनवाया हुआ है । कहते हैं कि यहाँ पहले महावीर जी का छोटा मंदिर था, वाजिद अली शाह की अस्वस्थता पर उनकी माँ ने वहाँ मनौती मानी । उसके ठीक हो जाने पर मंदिर बनवाया । वैसे "अली" वीरता के प्रतीक हैं और "महावीर" हनुमान बली भी । इसलिए भी 'अली' नाम हो सकता है रखा गया हो । अब मंदिर का नाम तो अली नहीं रह गया, हाँ मुहल्ले का नाम अलीगंज रह गया है । (रंगीन चित्र सं.-9)

अपरा एकादशी

अपरा एकादशी ज्येष्ठ मास के कृष्ण पक्ष में पड़ती है । इसके प्रभाव से ब्रह्महत्या जैसे बड़े-बड़े पाप भी दूर हो जाते हैं। व्रती एकादशी माहात्म्य की कथा सुनते-कहते हैं और एकादशी का चौक बनाकर पूजा की जाती है ।

देहरी चौक

वटसावित्री व्रत

ज्येष्ठ मास की अमावस्या को यह व्रत किया जाता है । इसे "बरमावस" (बड़मावस) या बरगदाही भी कहते हैं । इसमें "वटवृक्ष" की पूजा और परिक्रमा करके सौभाग्य की कामना की जाती है । सती सावित्री ने अपने पति सत्यवान के प्राणों का दान "वटवृक्ष" के नीचे ही प्राप्त किया था । कच्चे सूत की माला हल्दी में रँगकर सुहागिनें वटवृक्ष के चारों और लपेटकर परिक्रमा करती हैं और एक दूसरी को पहनाते हुए कहती हैं कि तुम्हारे पति ने तुम्हारे लिए नौलखा हार भेजा है । सुहागिनें सास को पकवान आदि भेंट कर आशीर्वाद प्राप्त करती हैं ।

सावित्री की पूजा करके उनकी कथा कही जाती है । कहते हैं कि वट के मूल में ब्रह्मा, मध्य में जनार्दन और अग्रभाग में शिव हैं तथा समग्र में सावित्री हैं।(रंगीन चित्र सं.-10)

गंगा दशहरा

ज्येष्ठ शुक्ल दशमी को गंगा दशहरा होता है । इसमें दस वस्तुओं का दान दस ब्राह्मणों को किया जाता है । इस दिन गंगा स्नान का अक्षय फल होता है । गंगा न मिलने पर किसी भी नदी में गंगा नाम स्मरण करके तिलोदक देने का विधान है । कहते हैं कि इसी तिथि पर बुधवार के दिन हस्त नक्षत्र में गंगा जी धरती पर उतरी थीं । इस तिथि को गंगा स्नान करने से पापों का हरण होता है इसीलिये इसे गंगा दशहरा कहते हैं । इस दिन गंगा की पूजा करके राजा सगर की और गंगावतरण की कथा कही जाती है । कृषक समाज में इसी दिन भूस्वामी के यहाँ जिसे काम छोड़ना होता है वह छोड़ देता है । यदि इस दिन न छोड़ा तो पूरे वर्ष भर काम करना पड़ेगा ऐसा सामाजिक नियम है ।

निर्जला एकादशी या भीमसेनी एकादशी

ज्येष्ठ मास की शुक्ल पक्ष एकादशी को यह व्रत किया जाता है । इसमें जल भी नहीं ग्रहण किया जाता । कथा है कि भीमसेन बिना खाये नहीं रह सकते थे । तब व्यास जी ने उन्हें केवल साल में एक यही एकादशी रहने को कहा जिसके पुण्य से सभी एकादशियों के दिन अन्न खाने का पाप नष्ट हो जाता है ।

इस एकादशी में पंखी, सुराही आदि का दान किया जाता है। इसमें एकादशी के सूर्योदय से द्वादशी के सूर्योदय तक जल पीने की भी मनाही रहती है । इस एकादशी के दिन एक घड़ा भर कर जल दान करने से सब पाप छूट जाता है। सामर्थ्यवान स्वर्ण डालकर जल दान करते हैं । इसको पाण्डव-एकादशी भी कहते हैं ।

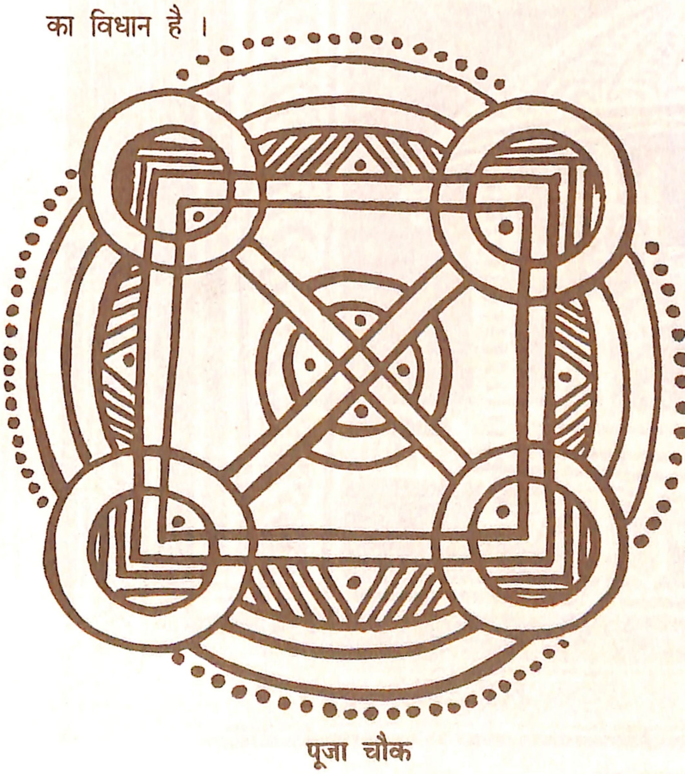

पूजा चौक

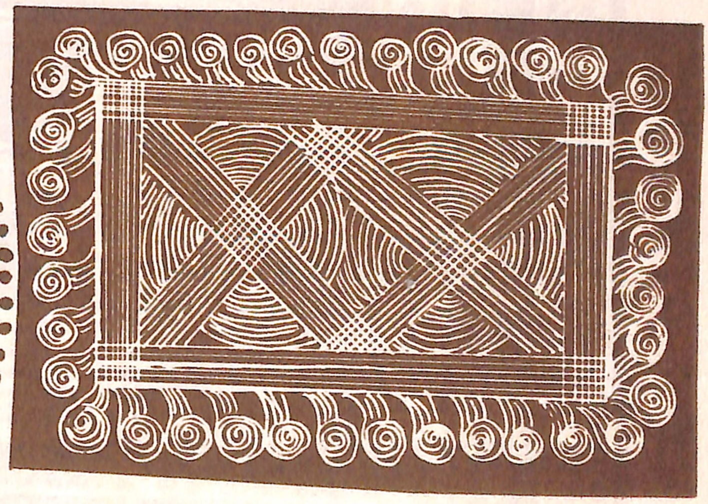

देहरी ऐपन

योगिनी एकादशी

यह आषाढ़ कृष्ण पक्ष में होती है । इसके बारे में कथा है कि कुबेर के शाप से हेममाली नामक माली को कुष्ठ रोग हो गया था । मार्कण्डेय मुनि के उपदेश से इस व्रत को करने से उसका कुष्ठ रोग ठीक हो गया । इसमें स्नान दान और व्रत का विधान है । कुष्ठ रोग से मुक्ति के लिए तथा भगवद्भक्ति के लिये यह व्रत किया जाता है ।

रथयात्रा

आषाढ़ के शुक्ल पक्ष की द्वितीया को यह उत्सव मनाते हैं । पुष्य नक्षत्र में बलभद्र जी, सुदामा जी सहित भगवान जगन्नाथ की रथयात्रा निकलती है । जगन्नाथपुरी में इसका विशेष उत्सव होता है । जगन्नाथपुरी से जनकपुरी तक रथ जाता है वहाँ लक्ष्मी जी से उनकी भेंट होती है फिर वापस अपने स्थान लौट जाते हैं । रथ यात्रा का यह उत्सव अन्यत्र भी बड़े-बड़े मंदिरों में मनाया जाता हैं ।

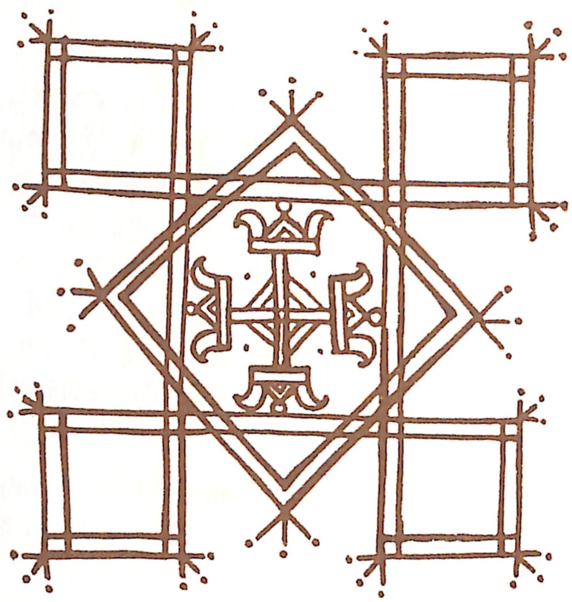

पूजा चौक

जगन्नाथ जी

देवशयनी एकादशी/हरिशयनी एकादशी

आषाढ़ शुक्ल एकादशी को भगवान विष्णु क्षीरसागर में शयन करने जाते हैं ऐसा उल्लेख पुराणों में मिलता है । चार माह तक सोते हैं और कार्तिक शुक्ल एकादशी को जगते हैं । भगवान के शयन काल में कोई भी शुभकार्य सम्पन्न नहीं किया जाता । इन चार महीनों को चातुर्मास कहते हैं । इस चातुर्मास में ऋषि महात्मा एक स्थान पर रहकर तपस्या करते हैं। (रंगीन चित्र सं.–11)

इस तिथि को व्रत, पूजन करके शय्या और बिछौना ओढ़ना आदि का दान किया जाता है ।

पद्मनाभा एकादशी

यह आषाढ़ शुक्ल एकादशी को पड़ती है । इस व्रत के प्रभाव से वर्षा होती है ऐसा विश्वास है । कथा है कि एक राजा के राज्य में तीन वर्ष तक अनावृष्टि के कारण अकाल पड़ गया । प्रजा को भूख-प्यास से मरता देख राजा दुखी होकर गहन वन में प्रवेश कर गये । ऋषि अंगिरस से इस दुख को दूर करने का उपाय पूछने पर उन्होंने इस एकादशी का माहात्म्य बताते हुए व्रत करने का उपदेश दिया । व्रत के प्रभाव से राजा-प्रजा का दुःख दूर हुआ ।

गुरु पूर्णिमा, व्यास पूजा, आषाढ़ी पूर्णिमा

इस त्योहार में गोबर से नाग और पुतला-पुतली बनाकर उसकी पूजा की जाती है । भाँति-भाँति के पकवान अवश्य बनाते हैं। कहा जाता है कि इसी दिन वेद व्यास की समस्त रचनाओं का भी श्रीगणेश हुआ था । व्यास आदि गुरु हैं इसीलिए इसे गुरु पूर्णिमा भी कहते हैं और शिष्य लोग गुरु पूजा करते हैं। मठों, मन्दिरों में भण्डारा किया जाता है जिसमें जो भी आ जाये प्रसाद ग्रहण करे । (रंगीन चित्र सं.–12)

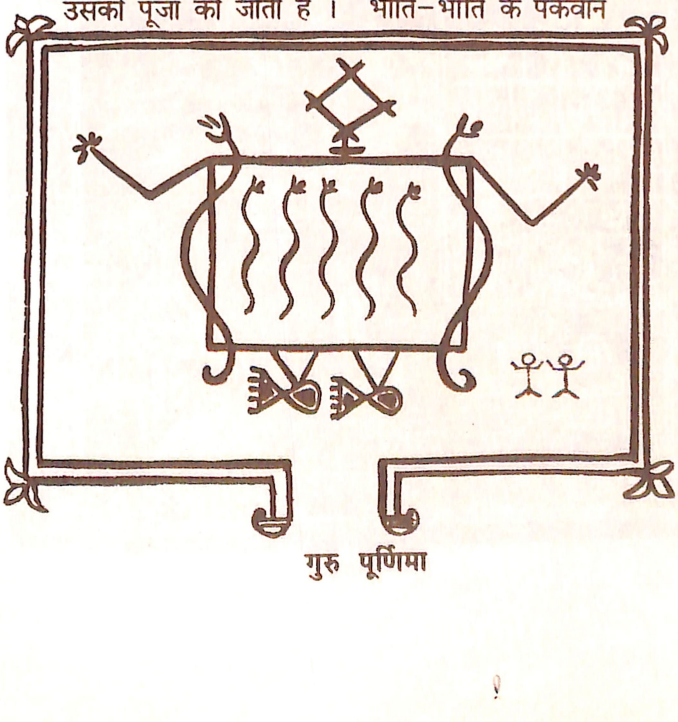

गुरु पूर्णिमा

कोकिला व्रत

यह व्रत आषाढ़ी पूर्णिमा को होता है।यह सौभाग्यवती स्त्रियों का व्रत है । पूर्णमासी की शाम से एक माह तक नियम से दातून, उबटन, तेल, स्नान, पूजन, भूमि शयन का व्रत लेकर यह संकल्प लिया जाता है कि सभी प्राणियों पर दया भाव रखा जाये । इसमें सूर्य देवता की पूजा की जाती है। इस व्रत में दक्ष प्रजापति के यज्ञ और सती माता की कथा कही जाती है । यह व्रत अक्षय सौभाग्य प्रदान करता है । (रंगीन चित्र सं.–13))

मङ्गला गौरी तथा शिवजी के व्रत

सावन के प्रत्येक सोमवार को शिव पार्वती पूजन और व्रत का विधान है । यह सोमवार पाँच पूरा हो सके इस लिये आषाढ़ के अन्तिम सोमवार को भी व्रत रखते हैं ।

हर सोमवार को शिव-गौरी जी की अलग-अलग कथाएँ होती हैं। इसे मंगला गौरी व्रत भी कहते हैं । इस व्रत से सदा मंगल करने वाली गौरी प्रसन्न होती हैं ।

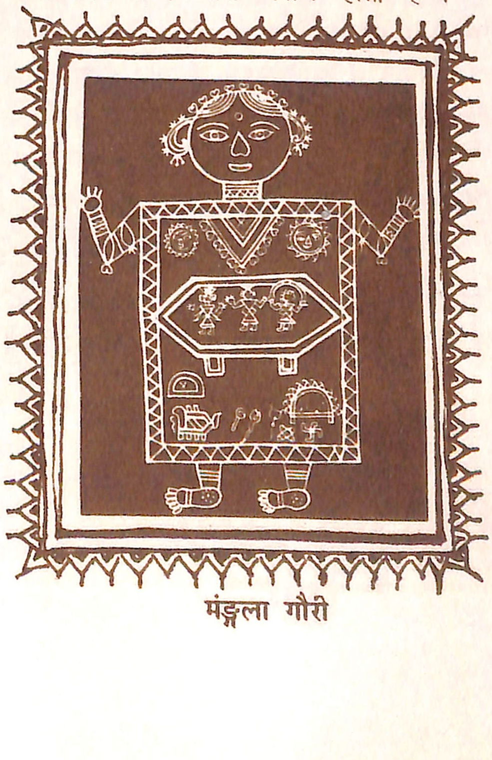

मङ्गला गौरी

हरियाली तीज

सावन की शुक्ल पक्ष की तीज को यह त्यौहार मनाया जाता है । हरे वस्त्र, हरी चूड़ियाँ, हरी मेंहदी रचकर श्रृंगार करती हैं कन्याएँ और सुहागिनें सभी झूला झूलती हैं, कजली, सावन गीत गाती हैं । घर में पकवान बनते हैं । नयी नवेलियाँ मायके जाती हैं । जिनके भाई–पिता लिवाने नहीं आते उनकी व्यथा उनके गीतों के माध्यम से उनके कण्ठ से फूट पड़ती है ।

हरियाली तीज बहू–बेटियों का त्योहार है ।

नाग पंचमी

नाग पंचमी सावन शुक्ल पंचमी को पड़ती है । इसमें नाग देवता की पूजा का विधान है । साँप के बिलों, भीटों पर दूध और धान का लावा चढ़ाया जाता है । जीवित नाग के दर्शन करके दूध पिलाया जाता है । नागों के चित्र बनाकर उसकी पूजा होती है । इस त्यौहार में विविध पकवान बनते हैं । गुड़ियों का मेला लगता है। लड़कियाँ साल भर की बनायी हुई गुड़ियाँ इस दिन तालाब में विसर्जित कर देती हैं । लड़के रंग बिरंगी छड़ी से उसे पीटते हैं । इस छड़ी में बलखाती लहरें, व फूल बने होते हैं । जब वर्षा नहीं होती तो सूखे में गुड़िया पीटी जाती है, जिससे वे भगवान से गुहार करें कि हमें सूखे में पिटने से चोट लगी, वह गुहार सुनकर वर्षा होगी। लड़कियाँ भीगे चने बाँटती हैं । पूजा के बाद नाग–नागिन के मनुष्य पर उपकार की कहानियाँ होती हैं। इसी दिन पूर्वाञ्चल में झूले पड़ते हैं और झूला झूलते हुए कजली, सावन के गीत गाये जाते हैं । लड़कियों को ससुराल से मायके लाने का रिवाज है । जो नहीं जा पातीं उनकी व्यथा–कथा के गीत और कहानियाँ हैं । इस त्यौहार में अखाड़ों में कुश्ती के दंगल होते हैं ।

इस दिन पृथ्वी खोदना वर्जित है क्योंकि कहानियों में वर्णन हैं कि धरती खोदने से नाग के बच्चे कट जाते हैं ।

शीतला सप्तमी

श्रावण के शुक्लपक्ष की सप्तमी को शीतला माता का व्रत रखा जाता है । दिन भर निर्जल व्रत रखकर देवी का कक्ष लीपा पोता जाता है। चैत्र की सप्तमी की तरह ही इसमें भी रातभर पकवान बनता है अन्तर यही है कि इसमें तालाब में ले जाकर पूजन सामग्री को विसर्जित कर दिया जाता है तथा भोग सामग्री को जल के नीचे मिट्टी में गाड़ दिया जाता है । इसे दह बैठाना कहते हैं अर्थात 'दाह' (गर्मी) को शांत कर दिया जाना ।

शीतला माता की पूजा के लिये दीवाल पर ऐपन हल्दी के थापे लगते हैं । शीतला माता की कथाएँ होती हैं जिनमें उनकी कृपा और महिमा का बखान होता है । दूसरे दिन बासी भोजन इसमें भी किया जाता है ।

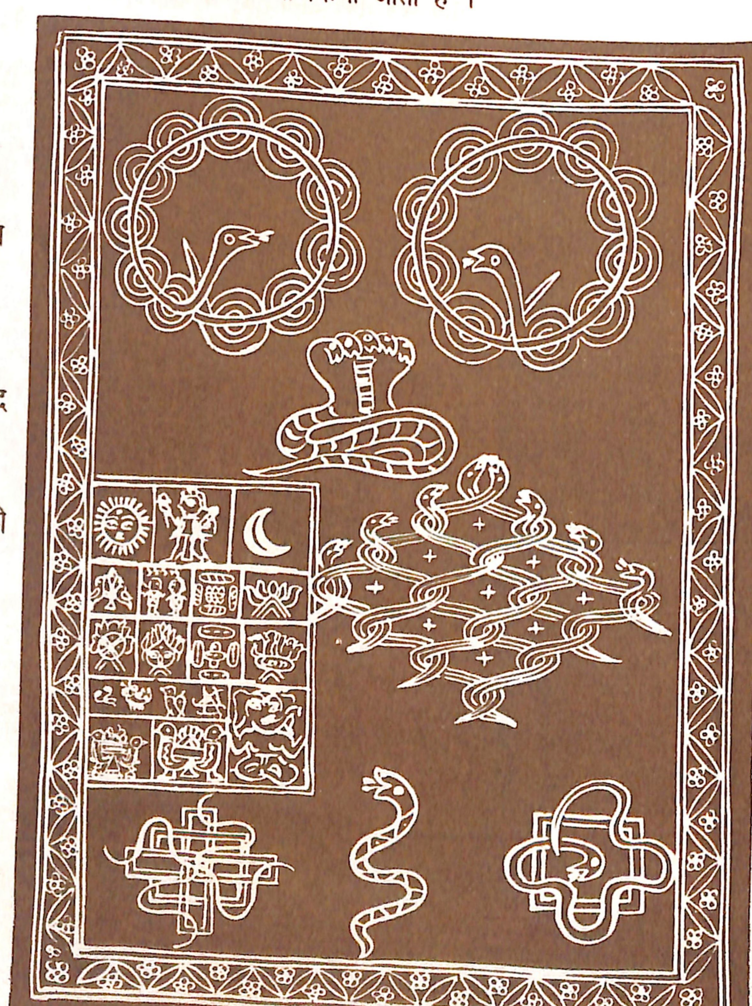

नाग पंचमी

कजरी नवमी, जवारा नवमी, नेवला नवमी

सावन शुक्ल पक्ष की नवमी को यह पर्व मनाया जाता है । नवमी को जवारे बो दिये जाते हैं और सात दिन तक नित्य फूल चढ़ाकर धूप बत्ती आरती करके पूजन होता है इसीलिये इसे जवारा नवमी कहते हैं । पुत्रवती स्त्रियाँ व्रत करती हैं । गेहूं जौ के कुठलों पर देवी की प्रतीक पुतली रची जाती है । जिसे नवमी लिखना कहते हैं । इसमें पंचतंत्र की लोक रूपांतरित कथा कही जाती है जिसमें एक स्त्री द्वारा नेवला पालने और नेवले द्वारा उसके पुत्र की रक्षा में सांप को काट डालने, भ्रमवश नेवले को मार डालने और पश्चाताप करने की कथा है । रात में नेवला सपने में आकर उसे शोक न करने के लिये कहता है और कहता है कि आज के दिन जो स्त्रियाँ मेरी पूजा करेंगी उनके पुत्रों की मैं सर्पों से रक्षा करूँगा । पड़ोसिनों के कहने पर नेवला के शोक में दुखी स्त्री ने नवमी लिखने के स्थान पर इस घटना का चित्र बनाया और प्रतिवर्ष यह चित्र बनाने-पूजने का विधान बन गया । लोक विश्वास है कि जो स्त्री नेवला नवमी को यह कथा कहेगी-सुनेगी, चित्र बनाकर पूजन करेगी, उसकी संतान अल्पायु नहीं होगी । चित्र में नेवला, साँप, पालने में बच्चा आदि बनाया जाता है । जिस वर्ष घर में विवाह हो या जन्म से कोई नया सदस्य घर में आता है तो दो पुतलियाँ बनती हैं। अन्यथा एक ही। पुतली के शरीर में निचले भाग में तेरह चौकोर घर बनते हैं। जिसमें नेवला और देवी-देवता, सगुन चिरैया, सूरज, चाँद आदि बनते हैं । मानव के सुख-दुख में प्रकृति की सहभागिता तथा मानव के अविवेक का यह अनन्य उदाहरण है। (रंगीन चित्र सं.-14)

कामदा एकादशी

श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी को कामदा अर्थात सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करने वाली एकादशी कहा जाता है। अन्य एकादशियों की तरह इसमें भी व्रत, पूजन, चित्रांकन और कथा की जाती है ।

पुत्रदा एकादशी

यह भी कार्त्तिक शुक्ल पक्ष की एकादशी है । इसका माहात्म्य भविष्य पुराण में बताया गया है कि इसके करने से पुत्र लाभ होता है। इसमें निःसंतान राजा महीजित की कथा कही जाती है जिन्होंने प्यासी गाय को हाँक कर पहले स्वयं पानी पी लिया । इस पाप का प्रायश्चित करने के लिए इस एकादशी का व्रत करने से उन्हें पुत्र लाभ हुआ ।

रक्षाबन्धन

यह पर्व सावन की पूर्णिमा अर्थात् श्रावणी के दिन मनाया जाता है । इस पर्व का भारतीय संस्कृति में विशेष महत्त्व है । इस दिन सभी घरों में पकवान बनता है । यह बहनों का त्यौहार है। इसी दिन भाई अपनी बहनों की रक्षा का बचन देते हैं । बहनें राखी बाँधकर भाई की दीर्घायु और यश की कामना करती हैं । किसी को भी भाई मानकर राखी बाँध देने या भेज देने पर वह उसकी रक्षा का संकल्प लेता है, इस बात का साक्षी है भारतीय इतिहास । भारतीय ललनाओं का यह महान राष्ट्रीय पर्व है, राखी के पावन सूत्रों में स्नेह, सौहार्द और संकल्प भरने की अपूर्व क्षमता है। इस पर्व की सांस्कृतिक गरिमा विशेष महत्त्व रखती है।

पूर्वांचल में ब्राह्मण, पुरोहित यजमान को रक्षा बाँधते हैं । भविष्य पुराण में कथा है कि इन्द्राणी ने इन्द्र को राखी

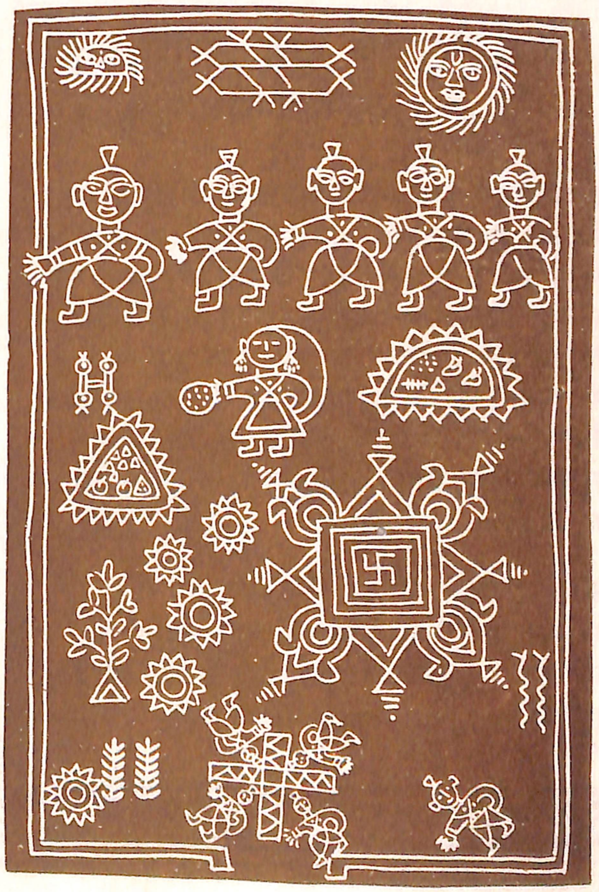

रक्षाबन्धन

बाँधी जिसके प्रभाव से इन्द्र ने बारह वर्षो से चले आ रहे देवासुर संग्राम में असुरों पर विजय प्राप्त की ।

रक्षा बन्धन पर चौक और भित्तिचित्र बनते हैं, इसे कहीं-कहीं सरमन (श्रवण) या सोन भी कहते हैं ।

कजली तीज

कजली तीज भादों की कृष्ण तृतीया को मनायी जाती है । निर्णय सिन्धु के अनुसार यह मध्य देश में अत्यधिक प्रचलित है । पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भी कजली तीज मनायी जाती है । इसमें गायों का पूजन किया जाता है । सात गायों के लिए आँटे की सात लोई बनाकर उन्हें खिलाया जाता है । बहुएँ सास के लिए उपहार मिठाई पकवान और रुपया मंस कर (संकल्प कर) सास को देती हैं। इसे बूढ़ी तीज भी कहा जाता है क्योंकि इसमें बड़ी बूढ़ियों को सम्मान दिया जाता है । बहुएँ उनके चरण स्पर्श करती हैं और आशीर्वाद प्राप्त करती हैं । झूला झूलते हुए भी और घरों में भी सावन गीत गाये जाते हैं ।

सिद्ध विनायक पूजा, गणेश चतुर्थी,

कलंकी चौथ

गणेश जी की पूजा वैसे तो प्रत्येक चतुर्थी को की जाती है और उसे गणेश चतुर्थी कहते भी हैं पर कुछ महीनों की चतुर्थी का विशेष महत्व है भादों मास की कृष्ण चतुर्थी का व्रत सिद्ध विनायक की कृपा प्राप्त करने के लिए किया जाता है । मोदक प्रिय गणेश की पूजा लडडू से तथा गजराज होने के कारण हरी दूब से भी की जाती है। श्रीगणेश आदि देवता हैं, प्रत्येक पूजन, संस्कार या अनुष्ठान में सर्वप्रथम विघ्नविनायक गणेश की पूजा की जाती है ।

इस व्रत में गणेश की कृपा और उनके जन्म से सम्बन्धित कथा कही जाती है । उनके नामों का कीर्तन-भजन स्मरण किया जाता है । इसके बाद दस लडडू ब्राह्मण को दान देकर दस लडडू स्वयं खाने का विधान है ।

इस चौथ को कलंकी चौथ भी कहते हैं । इस चतुर्थी का चाँद देखना वर्जित है । कथा है कि भगवान कृष्ण को भी यह चाँद देखने के कारण स्यमंतक मणि चुराने का कलंक लगा था । नारद जी ने श्रीकृष्ण के पूछने पर बताया कि आपने भादों कृष्ण चतुर्थी का चन्द्र देखा है । अब आप गणेश जी की पूजा करें तभी कलंक से मुक्त होंगे। चाँद देखने से कलंक क्यों लगता है इसकी भी कथा कहते हैं ! गणेश जी लडडू लेकर जा रहे थे चूहे की सवारी बीच से सरक गयी तो गिर पड़े लडडू गिर गया । चन्द्रमा देखकर हँस पड़े । गणेश जी ने शाप दिया कि जो तुम्हारा मुख देखेगा उसे कलंक लगेगा । चन्द्रमा ने कमल में मुंह छिपा लिया । देवताओं के साथ चन्द्रमा की प्रार्थना पर गणेश जी ने इतना किया कि केवल इसी चतुर्थी के दिन देखने पर कलंक लगेगा । यदि भूल से कोई चाँद देख लेगा तो गणेश पूजन से दोषमुक्त हो जायेगा। (रंगीन चित्र सं.-15)

बहुरा चौथ

कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को यह व्रत होता है । सत्तू या मिट्टी का बछड़ा बछड़ी (गोवत्स) बनाकर पूजा की जाती है । गेहूं जौं की बहुरी या सत्तू अथवा 'भौरी' (बाटी) एक समय सायं काल में खाई जाती है ।

इस व्रत में सती बिहुला की कथा कहते हैं । सती बिहुला ने अपनी तपस्या से अपने पति को पुनर्जीवन दिया था । मनसा देवी के माहात्म्य की कथा कही जाती है ।

इस व्रत में एक और कथा कही जाती है शेर और गाय की। जिसमें शेर को चाँद सूरज की साक्षी में पुनः आने का वचन देकर गाय अपने बच्चे को दूध पिलाने जाती है और बछड़ा भी माँ के साथ शेर का भोजन बनने के लिए वापस आता है । शेर उसकी सत्यनिष्ठा देखकर तथा बछड़ा द्वारा माँ-माँ (मामा) सम्बोधन करने पर उसे छोड़ देता है।

इसमें सात प्रकार के अनाज भुनवाकर उसका दान किया जाता है । चित्रों में सती बेहुला और गाय, शेर आदि के चित्र उकेरे जाते हैं । गाय और शेर की साथ-साथ पूजा होती है । (रंगीन चित्र सं.-16)

नवरात्र सांझी

मांगलिक चौक

गूँगा पंचमी, गूँगा नवमी

कहीं–कहीं भाद्र पद कृष्ण पंचमी को और कहीं–कहीं जन्माष्टमी के दूसरे दिन कृष्ण नवमी को गूंगा पर्व मनाया जाता है । यह जाहरपीर गुरु गुग्गा से सम्बन्धित है इसे हिन्दू–मुसलमान सभी मनाते हैं । रात भर जाहर–पीर की लोकगाथा गायी जाती है । उनसे सम्बन्धित कथाएं कही जाती हैं । इसमें दीवाल पर गेरू से पोतकर उसके ऊपर दूध में कोयला पीसकर उससे चित्र बनते हैं । चित्र में नाग अवश्य बनते हैं, नाग की पूजा भी होती है । पूजा के बाद बहने भाइयों को टीका लगाती हैं ।

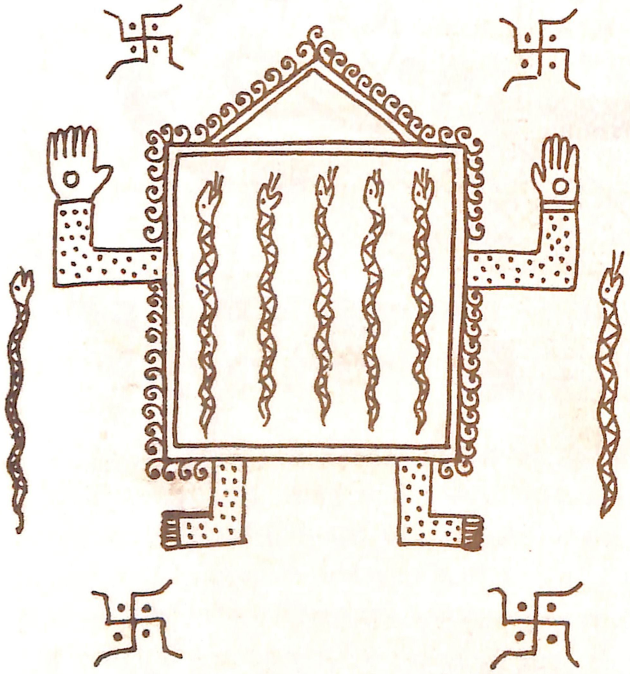

भित्ति चित्र - गूँगा पंचमी

हलषष्ठी (हरछठ)

भादों कृष्ण पक्ष की छठ को यह व्रत किया जाता है । जितने पुत्र हों, प्रति पुत्र के लिए बारह की संख्या में कुल्हिया (मिट्टी की छोटी कुल्हड़ें) भरी जाती हैं, छः प्रकार के भुने अनाज से । किसी- किसी के यहाँ पूड़ी भरते हैं । ढाक, कुश पर कपड़ा रंगकर छठी माता के लिए ओढ़ाते हैं । सागर बनाया जाता है उसी में लड़कों का मुंह धोकर काजल लगाया जाता हैं । प्रायः नदियों के किनारे जाकर कुश और पलाश की पूजा करते हैं । कुछ लोग घर में ही ढाक (पलाश) मँगाकर उसे मिट्टी में गाड़कर पूजते हैं । इस दिन हल से जोते–बोये खेत की कोई चीज खाना वर्जित है । क्योंकि वह गाय के बछड़े (बैल) के परिश्रम से जोता जाता है । बछड़ा पुत्र का प्रतीक है । यह व्रत पुत्र के लिए होता है इसीलिए बछड़ें के भाग का होने के कारण गाय का दूध भी वर्जित है । पुत्र की कुशल कामना हेतु यह व्रत किया जाता है । इसमें छठी माता की छः कथाएँ कही जाती हैं जिसमें माता की कृपा, असत्य आचरण से कष्ट, सत्य आचरण से अनिष्ट से रक्षा आदि के भाव प्रमुख होते हैं ।

एक लोक कथा में पोखर से पानी लाने के लिए लोकहित में पौत्र की बलि कर देने पर छठी माता की कृपा से बच्चा पुनःजीवित हो जाता है ।

इस में जल में स्वयं पैदा होने वाली चीजें तीनी (तिन्नी) का चावल कमलगट्टा, करेमुआ (नारी) का साग आदि खाया जाता है । महुआ, तीनी का चावल, भैंस के दूध का दही चढ़ाते हैं। चौक और भित्ति चित्र बनते हैं । जुते हुए खेत में पैर रखना भी वर्जित है। इसी दिन बलराम जी का जन्म-दिवस माना गया है, हल उनका आयुध है और बछड़ा उनका स्वरूप।जन्माष्टमी से दो दिन पूर्व हलषष्ठी पड़ती है।दीवालों पर हरछठ लिखी जाती है, जिसमें कथाओं से संबंधित सभी प्रतीक बनते है ।

भित्ति चित्र - हरछठ

श्रीकृष्ण–जन्माष्टमी

यह देशव्यापी त्यौहार है । श्रीकृष्ण का जन्म खीरे (डाल पात सहित) के बीच से कराया जाता है । खीरे को मातृ अंग का प्रतीक माना जाता है । कहीं–कहीं जन्म खीरे से न करके फूट (ककड़ी फल विशेष) से कराया जाता है । इसका दार्शनिक अर्थ है कि जिस प्रकार अंतर्दाह से फूट फट जाता है और उसमें से श्रीकृष्ण प्रकट होते हैं उसी प्रकार जब भक्त के हृदय में अंतर्दाह होता है तब वह फट जाता है । और उसमें ईश्वर का प्राकट्य होता है । फूट पकने पर स्वयं ही डंठल से मुक्त भी हो जाता है । कहीं–कहीं जन्माष्टमी जन्म से लेकर छठी तक और कहीं–कहीं बरही तक मनायी जाती है ।स्थल–स्थल पर कृष्ण लीला की झाँकियाँ सजायी जाती हैं तथा लीला होती है। विविध भित्ति चित्रों और अल्पनाओं में श्रीकृष्ण के जन्म और विविध लीलाओं का अंकन किया जाता है ।

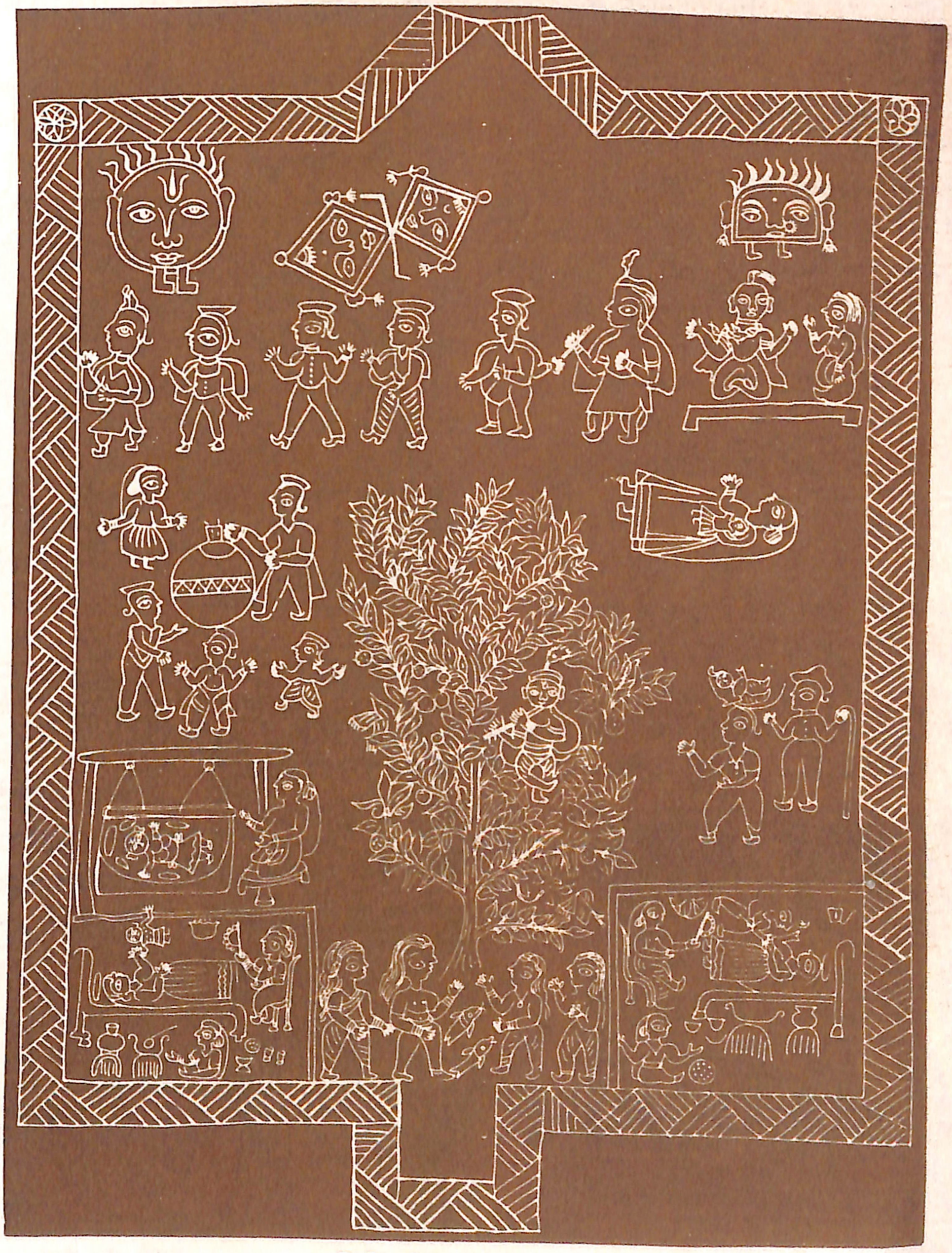

भित्ति चित्र - जन्माष्टमी

नन्दोत्सव

यह भादों बदी नवमी को मनाया जाता है । लोक विश्वास है कि इसी दिन भगवान श्रीकृष्ण को लेकर नन्द बाबा मथुरा से गोकुल गये थे ।

यह ब्रजक्षेत्र में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है । इसमें भी बसुदेव जी, नन्द जी, यमुना मैया, शेषनाग भगवान, कारागार, देवकी, यशोदा, गोपी, ग्वाल आदि के चित्र बनते हैं । श्रीकृष्ण लीला के गीत-कथाएँ तथा नाट्य होते हैं ।

अजा एकादशी

यह व्रत भाद्र पद कृष्ण एकादशी को होता है । इसमें कथा कही जाती है कि इस व्रत को नारद के उपदेश से राजा हरिश्चन्द्र ने किया था, तब उनके सारे कष्ट दूर हुए थे और उन्हें राज्य, धन, सम्पत्ति की पुनः प्राप्ति हुई थी ।

गाजवीज पर्व

भादों सुदी द्वितीया को कहीं-कहीं इस पर्व का प्रचलन है । इसमें कुल देवता और पितरों का स्मरण पूजन किया जाता है ।

इसमें गाजबीज की कथाएँ कही जाती हैं । एक कथा में गाज गिरने पर कुतिया के बच्चों की रक्षा की बात है । दूसरी में दो रोटी दान करके भूखी रहने वाली ग्वालिन के बच्चे की रक्षा और अन्न धन सोना का दान करने वाले राजा के पुत्र की मृत्यु की कहानी है । राजा को महात्मा उपदेश

भित्ति चित्र - गाजवीज पर्व

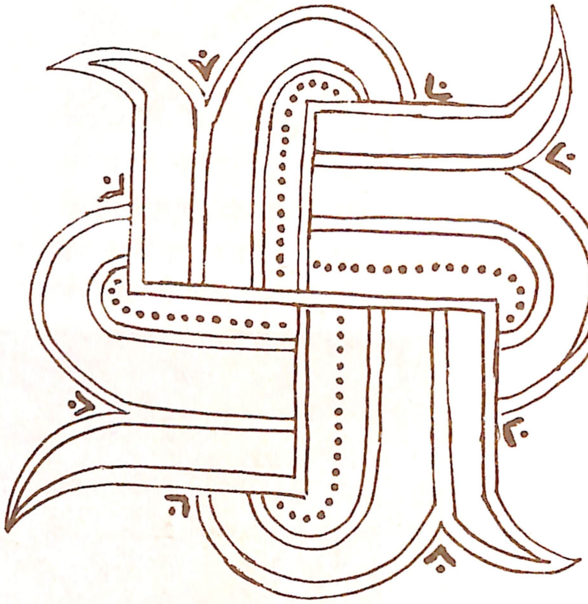

नन्दोत्सव सतिया

करते हैं कि प्रशंसा के लिए गर्व के भाव से जो दान किया जाता है वह निष्फल होता है । वह राजा जब सर्वस्व दान कर देते हैं तब उनका कल्याण होता है ।

इस पर्व में चित्रांकन में पेड़ के नीचे कुटी बनाकर उसमें कुतिया के बच्चे बनाकर गाज गिरती हुई दिखाया जाता है। ग्वालिन उसके और राजा के पुत्र, राजा, और महात्मा भी बनते हैं ।

देहरी का ऐपन

ओक दुआस या गोवत्स द्वादशी

यह पर्व भादों कृष्ण पक्ष की द्वादशी को मनाते हैं । यह व्रत भी पुत्र की कुशल कामना के लिये किया जाता है । कहीं-कहीं यह कार्तिक शुक्ल पक्ष की द्वादशी को मनाया जाता है । भविष्य पुराण में इसका नाम नन्दिनी व्रत भी है। इसमें नन्दिनी गाय और उसके बछड़े की कथा कहते हैं। गीली मिट्टी से पाटों पर गाय-बछड़े, शेरनी की आकृति बनाकर पूजा करते हैं ।

इस पर्व में द्विदलीय अन्न का विशेष महत्त्व होता है । अंकुरित मूँग, मोठ, चना आदि चढ़ाया जाता है । इसी का प्रसाद खाते हैं। गाय का दूध, दही, घी खाना वर्जित है।

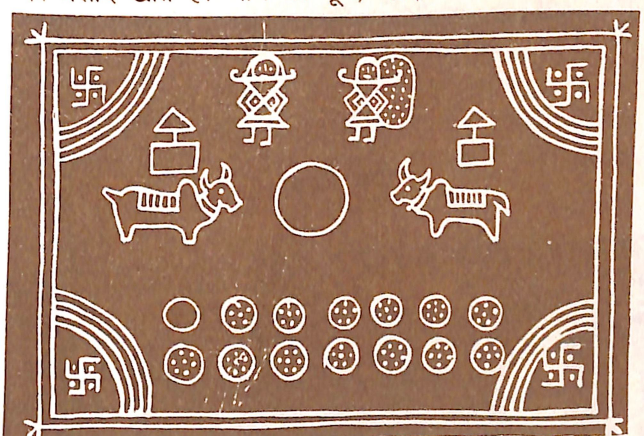

गोवत्स द्वादशी

हरतालिका तीज व्रत

यह व्रत श्रावण शुक्ल पक्ष में तृतीया को पड़ता है । स्त्रियों के लिए इसे सबसे उत्तम व्रत कहा गया है । इसमें केले के खम्भे गाड़ कर मण्डप बनाये जाते हैं । फूलों, वस्त्रों से मण्डप को सजाया जाता है और पार्वती की मिट्टी या बालू की मूर्ति स्थापित करके उसकी पूजा की जाती है। इसका फल यह बताया जाता है कि इसको करने वाली स्त्री विधवा नहीं होती । रात्रि-जागरण करके कथा-कीर्तन किया जाता है । शिव ने पार्वती को इस व्रत का माहात्म्य सुनाया था ।

इसमें पार्वती जी की शिव को प्राप्त करने के लिए की गयी तपस्या की कथा कही जाती है । कठिन तपस्या के दौरान सखियाँ पार्वती को गहन वन में हरण करके छिपा देती हैं इसीलिए इसका नाम हरतालिका पड़ा है । इसमें चौक बनाकर पूजन व रात्रि जागरण होता है । सुहाग की सामग्री चढ़ायी भी जाती है और दान भी की जाती है । यह व्रत निर्जल रखा जाता है। इसमें तीन बार स्नान किया जाता है ।

प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करके देवी से सुहाग लेकर तब व्रत पूरा होता है । पहले जितने भाई हों, उतने भीगे चने निगलकर तब पानी पिया जाता है । हरतालिका में चौक और भित्ति चित्र भी बनाया जाता है ।

देहरी का ऐपन

भादों का बड़ा इतवार

यह सूर्य का व्रत है । इस दिन एक समय भोजन किया जाता है सेंवई अवश्य बनायी जाती है । यह व्रत पूर्वी क्षेत्र में हरितालिका तीज के बाद पहले रविवार को किया जाता है कहीं-कहीं अंतिम रविवार को किया जाता है ।

सूर्यास्त के बाद जल भी ग्रहण करना वर्जित है । इसमें सूर्य की पूजा होती है । सूर्यास्त से पूर्व गाय के लिए अग्रांश निकालकर तब अलोना भोजन किया जाता है। रेखांकन में सूर्य और गाय बनती है । भादों और पौष महीने के समस्त रविवार को भी इसी तरह व्रत करने का विधान है ।

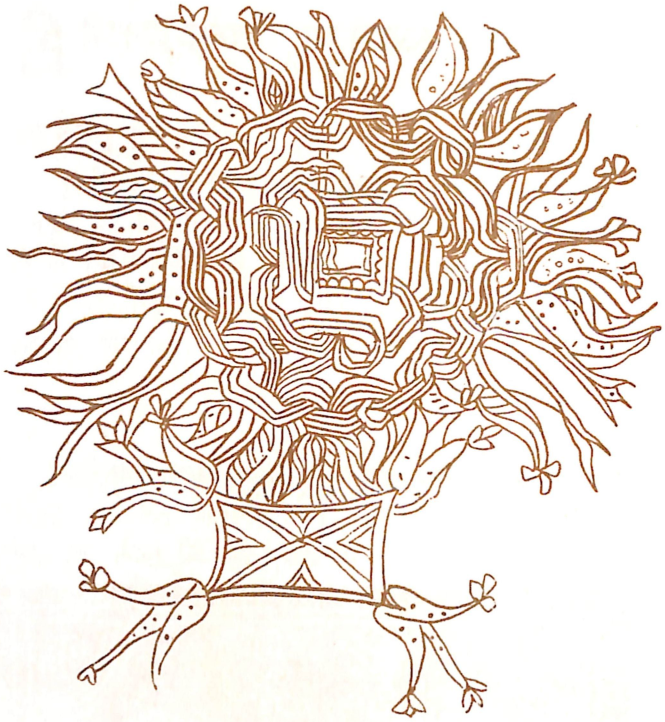

पूजा चौक

ऋषि पंचमी

यह व्रत भादों सुदी पंचमी को ऋषियों की प्रसन्नता के लिये और पाप मुक्ति हेतु स्त्री-पुरुष दोनों करते हैं । लोक कथाओं में वर्णन आता है कि रजस्वला स्त्री यदि अपने से बड़ों को या ऋषियों को जल अथवा अन्य खाद्य पदार्थ दे दें अथवा उसका स्पर्श कर दें तो उसे दोष लगता है । यह व्रत उस दोष से स्त्रियों को मुक्त करता है। इस व्रत के दिन लटजीरा (चिड़चिड़ा/ चिचिन्हा) की टहनी की दातून इक्कीस बार की जाती है। गोबर से लीपकर मिट्टी या ताँबें का जल भरा कलश रखकर उस पर अष्टदल कमल बनाकर सप्तऋषियों का पूजन करके ब्राह्मणों को दान दिया जाता है ।

इसमें पाँच कथाएं कही जाती हैं और चित्र में बैल, गाय, कुत्ता, कुतिया, साँप, पंडित-पंडितानी और सप्तऋषियों की आकृतियाँ अंकित की जाती हैं ।

दुबड़ी सातें

संतान सप्तमी/दुबड़ी सातें

यह व्रत भादों सुदी सप्तमी को किया जाता है । यह व्रत भी पुत्र कामना अथवा पुत्र की कुशलता के लिए है । सात की संख्या में पान, सुपारी, हल्दी, पेड़े चढ़ते हैं । आँटा, चावल, दूध, घी, शक्कर की बनी चीजों से भोग लगता है । इसमें सास को चाँदी का आभूषण देकर आशीर्वाद प्राप्त किया जाता है । हर वर्ष इस आभूषण में थोड़ी चांदी और बढ़ा दी जाती है । इस आभूषण की भी पूजा होती है । जो चाँदी के आभूषण बनवाने की स्थिति में न हो वे डोरा या दूब का बना लेती हैं। पूजन के बाद उसे

पहन लिया जाता है । इसमें दुबड़ी सातें की कथा होती है । चित्र जो बनते हैं उसमें मटका, साँप, बच्चे, स्त्री और सातें उरेहे जाते हैं ।

राधा–अष्टमी

भाद्रपद की शुक्ल अष्टमी को श्री राधा जन्म दिवस के रूप में मनाया जाता है।राधा अष्टमी को व्रत करके राधा–कृष्ण की युगल मूर्ति का पूजन तथा भजन–कीर्तन किया जाता है । रासलीलाएँ होती हैं, अल्पना, चौक से घर–द्वार सजाये जाते हैं ।

दशावतार

भादों शुक्ल दशमी के दिन दशावतार व्रत का विधान है जो भगवान विष्णु के दश अवतारों की पूजा के लिए किया जाता है ।

दश अवतारों के चित्र या मूर्त्तियाँ बनती हैं । चावल और गेहूं के विविध व्यंजनों का बीस की संख्या में भोग लगता है । दिन भर व्रत रखकर सायंकाल दशावतारों की कथा सुनी जाती है । दशावतार हैं– मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, बुद्ध और कल्कि।

दशावतार

वामन एकादशी

वामन एकादशी (वामनजयंती) भाद्रपद के शुक्ल–पक्ष में पड़ती हैं । इस दिन क्षीरसागर में शेषशैय्या पर सोए हुए भगवान करवट लेते हैं । इस दिन वामन भगवान् की पूजा करके दही, चावल और रूपयों का दान किया जाता है । चित्रों में वामन अवतार को रेखांकित किया जाता है ।

वामन द्वादशी

यह भादों सुदी द्वादशी को पड़ती है । एक मान्यता है कि इसी दिन वामन महाराज का जन्म हुआ था । दूसरी है कि इसी दिन वामन ने राजा बलि को छला था । इसमें नियम पूर्वक नदी में स्नान करके व्रत धारण कर वामन महाराज की पूजा करने से समस्त पाप छूटते हैं और समस्त मनोरथ पूरे होते हैं, ऐसी कथाएँ कही जाती हैं ।

गोत्रिरात्रि

यह व्रत भादों सुदी त्रयोदशी से लेकर भादों पूर्णिमा तक किया जाता है । त्रयोदशी को लक्ष्मीनारायण की पूजा करके व्रत प्रारम्भ होता है जो तीन दिन तक चलता है। इसमें गाय और बछड़े की पूजा की जाती है । इसमें राजा दिलीप की कथा कही–सुनी जाती है, जिन्हें गाय की सेवा से संतान लाभ होता है; जो राजा रघु के नाम से जाने गये। रघुवंश का नाम इन्हीं के नाम पर पड़ा । भगवान श्री राम इन्हीं के वंशज हुए ।

अनन्त चतुर्दशी

भाद्र पद की चतुर्दशी को अनंत भगवान की पूजा हेतु यह व्रत किया जाता है। चौदह गाँठों की दूब या चौदह गाँठों का कच्चे सूत का बना अनंत हल्दी में रंग कर हवन के धुएँ से सेंककर दाहिनी भुजा में पहना जाता है। बाजार में बने बनाये अनंत भी मिलते हैं । इस व्रत में भी एक समय अलोना (लवण रहित) भोजन किया जाता है जिसमें सेंवई आवश्यक होती है। अनंत की चौदह ग्रंथियों में चौदह देवों की पूजा की जाती है । प्रारम्भ में आदि देव विष्णु अंत में शेषनाग और मध्य में संसार की सृष्टि संचालन, पालन और संहार करने वाले बारह देवता हैं– ब्रह्मा, शिव, अग्नि, चन्द्र, सूर्य, गणेश, कार्तिकेय, इन्द्र, जल, वायु, वरुण, और वसुदेव ।

भगवान विष्णु का एक नाम अनंत भी है । इस अनंत पूजन व्रत से मन के समस्त कलुष मिट जाते हैं । इसमें सुमंत ब्राह्मण और उसकी पत्नी शीला की कथा कही जाती है । चित्रों में अनंत भगवान शेषनाग और लक्ष्मी उरेहे जाते हैं ।

रम्भा चतुर्दशी या कदली व्रत

यह व्रत भादों सुदी चतुर्दशी को होता है । यह व्रत पुत्रवती स्त्रियाँ करती हैं । पूरे एक वर्ष इस व्रत की तैयारी होती है । व्रती स्त्री अपने हाथ से केले का पेड़ लगाती है उसकी नित्य पूजा करती है । अनन्त चतुर्दशी को इस कदली वृक्ष की विशेष पूजा होती है । कदली वृक्ष को भगवान विष्णु का रूप माना गया है ।

इस व्रत से संतान और सौभाग्य मिलता है, इस आशय की कहानियाँ कही जाती हैं । अनंत चतुर्दशी की तरह ही विष्णु भगवान के चरण और उनके चित्र उरेहे जाते हैं, जिसमें केले का वृक्ष अवश्य बनता है ।

रूक्मिणी को रंभाव्रत का फल मिला था उन्होंने द्रोपदी को अपने व्रत फल का कुछ अंश दिया था जिससे द्रोपदी की कौरव सभा में लाज बची, यह कहानी कही जाती है ।

उमा–महेश्वर व्रत

भादों की पूर्णिमा को यह व्रत किया जाता है । इसमें महादेव जी और उनकी शक्ति उमा की पूजा होती है । मत्स्य पुराण की कथा है कि एक बार दुर्वासा ऋषि ने भगवान विष्णु को शिव की दी हुई बेल पत्र की माला दी । श्री विष्णु ने माला गरूड़ के कन्धे पर रख दी । दुर्वासा ने इसे माला का अपमान समझा और शाप दे दिया । विष्णु लक्ष्मी, गरूड़ विहीन हो गये । गौतम मुनि के उपदेश पर उमामहेश्वर का व्रत करने से विष्णु भगवान को पुनः लक्ष्मी, गरुड़ और बैकुण्ठ के अधिकार की प्राप्ति हुई । यह व्रत सकल कामना की सिद्धि करने वाला है। इसमें उमा–महेश्वर की प्रतिमा व चित्र बनाये जाते हैं । (रंगीन चित्र सं.–17)

साँझी

भादों मास की पूर्णिमा से आश्विन अमावस्या तक लड़कियाँ यह त्यौहार मनाती हैं । गोबर से विभिन्न प्रकार की साँझी भूमि और भित्ति दोनों पर बनायी जाती है । इन्हें सजाने के लिये रंग–बिरंगे कागज, कौड़ी, शंख, मोती, तथा गिलट आदि के आभूषणों का प्रयोग किया जाता है । इसमें चाँद, सूर्य, तारे, गंगा–यमुना तथा विभिन्न देवता और उनके आयुध, पशु–पक्षी, जीव जन्तु तथा विभिन्न चित्र आदि बनते हैं ।

पितृ विसर्जन अमावस्या को पन्द्रह दिनों की बनी हुई यह समस्त साँझियाँ जल में विसर्जित कर दी जाती हैं । पूरे पन्द्रह दिन और विसर्जन के लिये जाते समय भी साँझी के गीत गाये जाते हैं । साँझी कुमारियों, किशोरियों की आराध्य देवी हैं । साँझी के बारे में विद्वानों के अलग–अलग मत हैं कि ये ब्रह्मा की मानसी पुत्री संध्या हैं, राधा हैं या दुर्गा हैं। व्रज की साँझी कला विश्व प्रसिद्ध हो गयी है ।

साँझी के गीत में किशोरियों के विविध मनोभावों की सहज अभिव्यक्ति है जिसमें भाई की कुशल कामना, अच्छा वर पाने की कामना आदि प्रमुख है ।

उमा–महेश्वर

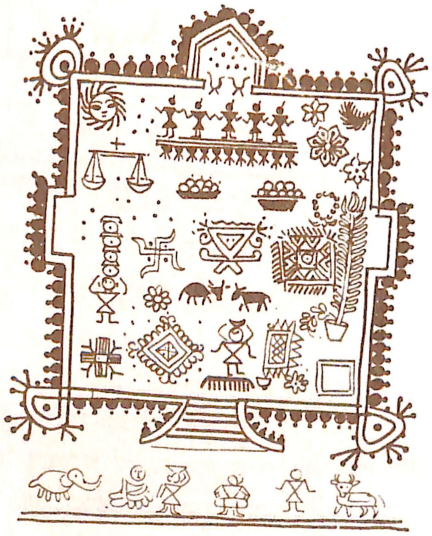

साँझी

पितृ पक्ष प्रारम्भ

क्वार बदी परेवा (प्रथमा) से पितृ पक्ष प्रारम्भ होता है और पितरों का तर्पण किया जाता है। पितरों की पुण्य तिथि के दिन श्राद्ध तथा ब्राह्मण को भोजन कराया जाता है ।

नित्य ओरौनी (औरी) के नीचे द्वार के पास लीपकर फूल चढ़ाये जाते हैं । तिल जौ और जल से तर्पण किया जाता है । पितृपक्ष में यह तर्पण वही पुरुष करता है जिसके पिता या माता स्वर्गवासी हो गये हैं । इसमें पहले मातामह-मातामही को तर्पण कर तब पितामह-पितामही को और उसके बाद पिता-माता को तर्पण करते हैं ।

पितृ पक्ष के पन्द्रह दिन खान-पान, स्नान आदि में नियत नियमों का श्रद्धा पूर्वक पालन किया जाता है । क्षौरकर्म नहीं किया जाता ।

कहा जाता है कि यमराज पितृपक्ष में महालय के द्वार खोल देते हैं जिससे मृत पितर अपने वंशजों का तर्पण लेने धरती पर आ सकें । जो संताने श्रद्धा से तर्पण करती हैं उन्हें पितरों का आशीर्वाद मिलता है ।

महालक्ष्मी व्रत / जिउतिया / जीवित पुत्रिका

भादों सुदी अष्टमी (राधाष्टमी) से प्रारम्भ होकर महालक्ष्मी व्रत आश्विन कृष्ण अष्टमी तक पूरे सोलह दिन तक चलता है । इस दिन शय्या त्यागकर, सोलह बार हाथ मुंह धोकर, सोलह धागों का डोरा लेकर महालक्ष्मी को प्रणाम कर, सोलह गाँठि लगाई जाती हैं । यह गण्डा पंडित से भी बनवाया जाता है और स्वयं स्त्रियाँ भी बना लेती हैं । अनुष्ठान शुरू होने के दिन स्त्रियाँ नदी-तालाब में स्नान

महालक्ष्मी व्रत

पूजा का ऐपन

करने जाती हैं । सधवा स्त्रियाँ चालीस लोटा जल सिर पर डालकर नहाती हैं और चालीस अंजलि जल सूर्य भगवान को चढ़ाती हैं । विधवा स्त्रियाँ दूब हाथ में लेकर केवल सोलह लोटा जल सिर पर डालकर सोलह अंजलि जल चढ़ाती हैं ।

घर आकर लकड़ी के पाटे पर सूत का गण्डा रखकर लक्ष्मी जी का ध्यान, आवाहन, पूजन, हवन, करके सोलह बोल की कहानी–सोलह बार कहती हैं और सोलह बार अक्षत छोड़ती जाती हैं ।

आश्विन बदी अष्टमी कों निर्जला व्रत रखकर तब व्रत पूरा होता है । सोलह पकवान बनाकर पूजती हैं । मिट्टी का हाथी पूजकर उसके पास गण्डा रख दिया जाता है । और हथिया की कहानियाँ कही जाती है । एक कहानी प्रसिद्ध है कि राजा की दो रानियों में एक के एक ही पुत्र था, दूसरी के एक सौ साठ। एक सौ साठ पुत्रों ने मिलकर मिट्टी का विशाल हाथी माँ की पूजा के लिये बनाया । एकलौते पुत्र ने माँ की उदासी दूर करने के लिए इन्द्र को पूजा से प्रसन्न करके उनका ऐरावत ले आया । माँ ने पूजन करके कहा–'का करिहैं सौ साठ, एक पूत पुजावे आस ।'

पूरे सोलहों दिन कहानियाँ होती हैं ।

महालक्ष्मी का डोरा सोलहवें दिन तालाब या नदी में विसर्जित कर दिया जाता है । यह व्रत संतानवती स्त्रियाँ संतान की कुशल कामना से करती हैं । इसमें पुराण कथा पर आधारित जीमूतवाहन की कथा कही जाती है और चित्रों में भी इन कथाओं के पात्र अंकित होते हैं ।

मातृ नवमी

पितृ पक्ष में आश्विन कृष्ण नवमी को दिवंगत सास के लिए तर्पण किया जाता है । सास की आत्मशांति के लिए ब्राह्मणी को भोजन कराकर वस्त्र आदि दान दिया जाता है । यदि सास सुहागिन दिवंगत हुई है तो सुहागिन ब्राह्मणी को, विधवा हुई हो तो विधवा ब्राह्मणी को दान, भोजन हेतु बुलाते हैं । और उसी के अनुरूप सुहाग सामग्री रंगीन वस्त्र या सादे वस्त्रों का दान किया जाता है । इसे तिथि खिलाना कहते हैं।

महालक्ष्मी

इन्दिरा एकादशी

यह आश्विन बदी एकादशी को पड़ती है । इसके करने से नरक में पड़े पूर्वजों को स्वर्ग लोक प्राप्त होता है ।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में कथा है कि इन्द्रसेन राजा को नारद जी ने उपदेश दिया कि तुम्हारे पूर्वज अधोगति को प्राप्त यमलोक में दुख भोग रहे हैं, तुम इन्दिरा एकादशी का व्रत करो तो उन्हें बैकुण्ठ धाम मिलेगा । पुत्र के इस व्रत करने से उनके पितरों को सद्‌गति मिली ।

पूजा का ऐपन

पितृ विसर्जन, महालय

यह आश्विन अमावस्या को पड़ता है । इसमें श्राद्ध, पिण्डदान एवं पितरों की तृप्ति हेतु ब्राह्मणों को भोजन कराकर दान दिया जाता है। इसी के दूसरे दिन से देव पक्ष प्रारम्भ होता है इसलिए पूरे घर को स्वच्छ किया जाता है ।

इसमें खड़ा उड़द-भात आदि का भोजन किया जाता है । काग के लिए भोजन निकाला जाता है । एक समय ही श्राद्धकर्ता भोजन करता है ।

मामुलिया

आश्विन मास के कृष्ण पक्ष में प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक कुमारी लड़कियां इसे मनाती हैं । इसमें बेर के वृक्ष की डालों को सजाकर उसे लेकर घूमती हैं और द्वार-द्वार पर दिखाती हैं फिर लाकर घर के आँगन में रोप देती हैं और उसकी पूजा करती हैं । मामुलिया को विभिन्न फूलों, वस्त्रों, आभूषणों से सजाने और उसकी ससुराल से बुलावा आने पर उसकी विदाई करने के वर्णन गीतों में होते हैं ।

बेरी का पेड़ कन्या का प्रतीक है ।

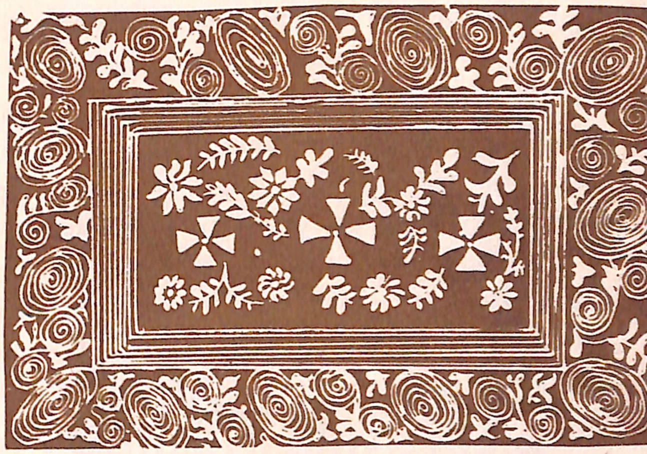

देहरी का ऐपन

शारदीय नवरात्र

क्वार सुदी प्रथमा से 'नवरात्र' का व्रत आरंभ होता है । इसी दिन दुर्गापाठ के लिए कलश की स्थापना होती है ।

नवरात्र में कुमारी कन्याओं को भोजन कराया जाता है । अष्टमी को हवन होता है तथा नवमी को व्रत पूर्ण होता है । पूरा नवरात्र व्रत रखने वालों को दशमी को पारण करना चाहिए । कुछ लोग प्रथम और अंतिम दिन व्रत रखते हैं ।

नवरात्र भर भजन-कीर्तन, रतजगे होते हैं । महिषासुर मर्दिनी के चित्र और मूर्तियों की पूजा होती है । सभी शक्तिपीठों, देवी मंदिरों में दर्शन, पूजन होता है ।

इसी दिन रावण पर विजय पाने के लिए भगवान श्रीराम ने शक्ति पूजा प्रारंभ की थी । नवरात्र भर रामकथा, रामलीला, रामायण पाठ होता है ।

नवरात्र में कोई भी शुभ कार्य लोग बिना शुभ तिथि, घड़ी का विचार किये भी सम्पन्न करते हैं, क्योंकि यह देवी की कृपा के दिन माने गये हैं ।

दुर्गा षष्ठी

आश्विन शुक्ल पक्ष षष्ठी को दुर्गाछठ कहते हैं । इसमें शिव-पार्वती की कथा कही जाती है । माता पार्वती को बालक गोद में खिलाने की साध लगी । शिव जी ने कहा कि तुम तो संसार की माता हो, तुम्हें क्या कमी? वे बोलीं कि मुझे बालक खिलाने की साध है । शिव जी कार्तिकेय जी को लाने गये तब तक पार्वती ने एक बच्चे का गुडडा बना दिया । विष्णु जी कौतुक वश उसमें समा गये । एक और बालक गोद में देखकर शिवजी प्रसन्न

हुए । सारे देवताओं, ग्रहों को शिशु देखने के लिए बुलाया । शनि की कुदृष्टि पड़ते ही बालक का सिर कट गया और गायब हो गया । शिव जी ने कहा कि जो बच्चा उत्तर की ओर सिर करके सुलाया गया हो या माँ अपनी पीठ के पीछे सुलाये हो, उसी बच्चे का सिर लाओ । एक हाथी का बच्चा इस दशा में मिला । उसका सिर लगाया गया और गणेश जी बन गये । कहते हैं कि इसी छठ को पार्वती जी ने गुड्डा बनाया था ।

दुर्गाष्टमी

आश्विन शुक्ल अष्टमी को दुर्गापूजा का विशेष महत्त्व है। कुछ लोग नवरात्र व्रत का इसी तिथि को हवन करके नवमी को पारण कर लेते हैं । इस दिन कन्या पूजा का विधान है । पाँच या सात कन्याओं, एक गणेश या लंगूर के साथ (अथवा अपनी सामर्थ्य अनुसार संख्या में, पूजन करके) भोजन कराकर दक्षिणा में फल, पान, द्रव्य आदि उन्हें दिया जाता है। (रंगीन चित्र सं.-18)

दुर्गानवमी, दुर्गापूजा

आश्विन शुक्ल नवमी शारदीय नवरात्र पूर्ण होने की तिथि है। अधिकांश लोग इसी तिथि को हवन पूर्णाहुति तथा कन्या भोज कराते हैं । देवी रतजगा (रात्रि जागरण) भजन-कीर्तन, रामायण पाठ आदि के कार्यक्रम चलते हैं । दुर्गा पूजा के सामूहिक आयोजन भी स्थल-स्थल पर होते हैं । देवी मंदिरों में विशेष सजावट की जाती है ।

विजय दशमी (दशहरा)

आश्विन सुदी दशमी को विजय दशमी पर्व रावण वध और राम की विजय की स्मृति में मनाया जाता है । नवरात्र के बाद इसी दिन दुर्गा प्रतिमा का विसर्जन किया जाता है । हवन की राख जवारा आदि नदी में प्रवाहित किया जाता है। असत्य और अहंकार की समाप्ति के प्रतीक स्वरूप रावण का पुतला जलाकर विजय उत्सव मनाया जाता है । शमी वृक्ष की पूजा होती है । क्षत्रिय अपने शस्त्रों की पूजा करते हैं । अलग-अलग क्षेत्रों में अपनी विशेष शैलियों में रामलीलाएँ होती हैं । लोग दशहरे की, विजय की शुभकामना देने एक दूसरे के घर जाते हैं ।

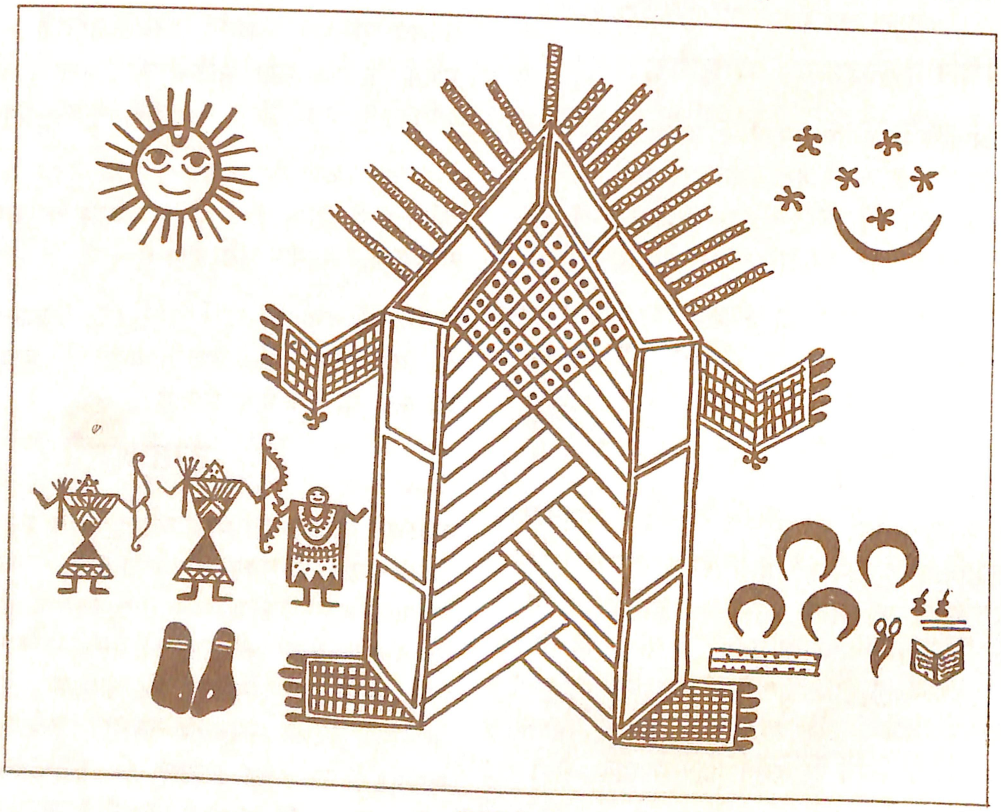

दशहरा

पापांकुशा एकादशी

यह आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी होती है । पद्मनाभ भगवान की इस दिन पूजा की जाती है । इसका भी ब्रह्माण्ड पुराण में बड़ा माहात्म्य बताया गया है। व्रत के प्रभाव से पापाचार पर अंकुश लगता है, लोगों में सद्भावना के प्रति प्रेरणा जगती है ।

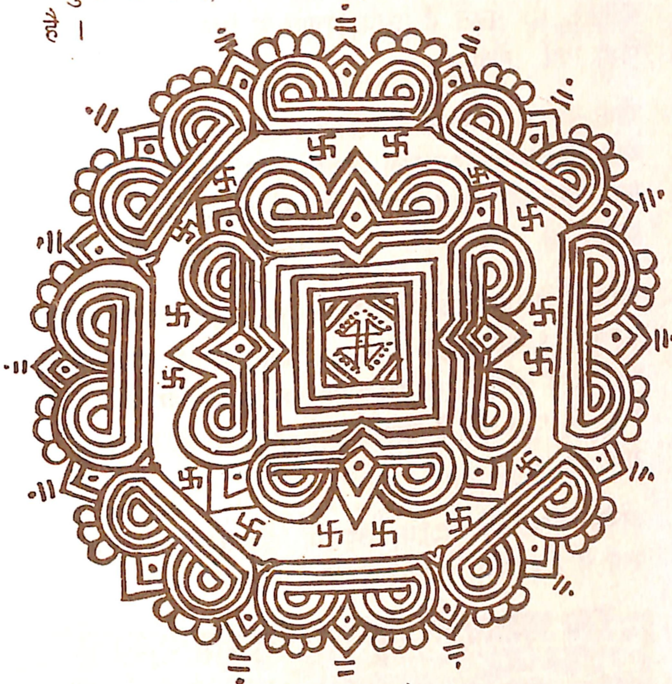

एकादशी चौक

शरद पूर्णिमा / कोजागर

आश्विन पूर्णिमा को शरदोत्सव मनाया जाता है । देवमूर्तियाँ व ठाकुर जी मंदिर और घर से बाहर निकालकर खुले आकाश तले रखे जाते हैं । श्वेत वस्त्र पहनाकर श्वेत पुष्पों से उनका श्रृंगार किया जाता है । शक्कर, कालीमिर्च, देशी घी, मिलाकर भोग लगता है । इस भोग सामग्री को रतनजोत कहते हैं । कहते हैं कि चन्द्रमा की किरणों से इस पूर्णिमा को अमृत टपकता है। इसीलिए ओस और किरणों से भीगी खीर का भोग लगाकर प्रसाद प्रातः लिया जाता है । पूर्णिमा को व्रत रखकर सत्यनारायण की कथा और पूजन किया जाता है ।

कोजागर व्रत भी इसी तिथि को पड़ता है । ऐरावत सहित इन्द्र और महालक्ष्मी की पूजा की जाती है । इसमें वलित नाम के निर्धन और विद्वान व्यक्ति की कथा कही जाती है, जिसे महालक्ष्मी की कृपा प्राप्त हुई थी ।

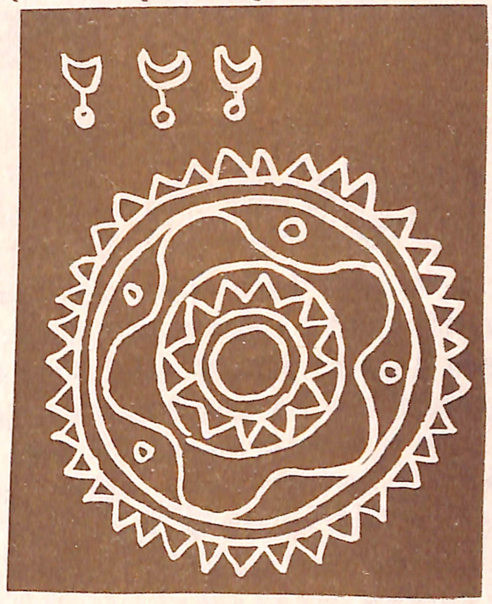

पूजा चौक

कार्तिक स्नान

कार्तिक कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से कार्तिक प्रातः स्नान का नियम प्रारंभ होता है जो पूरे महीने चलता है । नदीतट पर स्नान, पूजन दान के बाद कथा कही-सुनी जाती है । गंगा, सरयू, गोमती, यमुना आदि पुण्य सलिला नदियों के तट कार्तिक के गीतों, कथाओं से गूँज उठते हैं । रोज पाँच कथायें कही जाती हैं । पूजा के लिए नित्य चौक बनते हैं ।

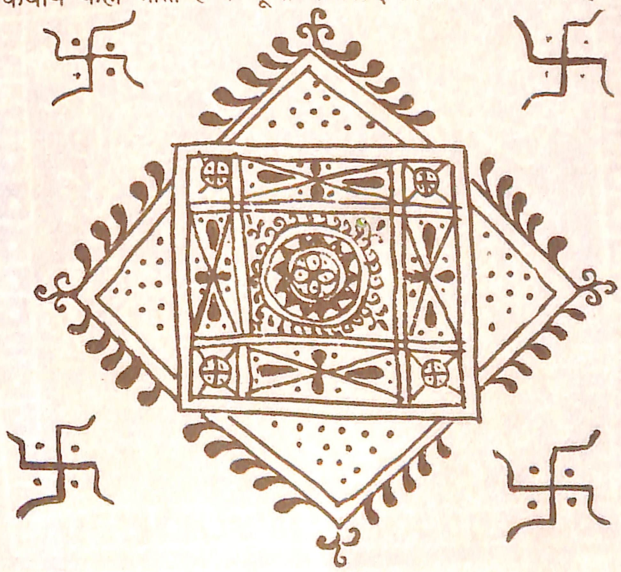

पूजा चौक

करवा चौथ

यह व्रत कार्तिक कृष्ण चतुर्थी को सौभाग्यवती स्त्रियों द्वारा किया जाता है । दिन-भर निर्जला रहकर रात्रि में चन्द्र दर्शन करके पूजा की जाती है, कथा कही सुनी जाती है । दीवाल पर करवा बनाया जाता है जिसमें चन्द्रमा, गणेश तथा सात भाई, एक बहन, सात भाभी आदि बनाये जाते हैं, धोबन बनती है, पेड़ के पीछे चलनी में दिया रखकर चाँद दिखाता भाई और ग्वालिन बनती है । मिट्टी के अथवा पीतल के करवे (गेंडुवा) से पूजा होती है । करवे की टोंटी में चार सीकें डाली जाती हैं । करवे के ऊपर दीपक जलाकर रखा जाता है । भूमि पर भी ऐपन से चौक बनता है । करवे के भित्तिचित्र में शिव, पार्वती, गणेश, कार्त्तिकेय, हनुमान, चाँद, सूरज, स्वस्तिक आदि की आकृतियाँ बनती हैं । करवा भी रँगकर उसपर चित्रकारी कर सजाया जाता है । चार कथायें कही जाती हैं । चार की संख्या में सामग्री चढ़ती है । कहीं-कहीं कच्चे चावल की पित्री, पूड़ी, अक्षत आदि से करवा भरा जाता है पर कहीं-कहीं जल से। सुहागिनें परस्पर करवा बदलती हैं चार बार । पूजन के समय सास को पकवान, मेवे, वस्त्र, द्रव्य आदि देकर चरण स्पर्श किया जाता है । पूजन के बाद धोबन को भोजन, द्रव्य देकर उसका चरण स्पर्श करके तब भोजन किया जाता है। यह व्रत सामूहिक रूप से किया जाता है ।

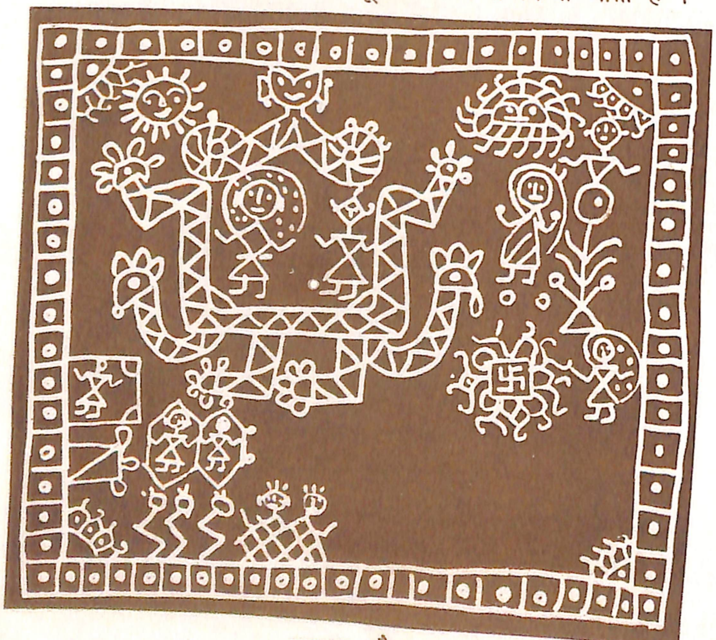

करवा चौथ

अहोई अष्टमी / अशोक अष्टमी

कार्तिक कृष्ण पक्ष की अष्टमी को यह व्रत किया जाता है। यह पुत्रवती स्त्रियों का व्रत है । दीवाल पर अहोई का चित्र बनता है । कहीं-कहीं एक पुतली का, कहीं दो का। आठ घर बनते हैं । सेही के बच्चे और सेही के चित्र बनते हैं । हनुमान, गणेश, शिव, पार्वती भी बनते हैं । सगुन चिरैया और सकुची का काँटा बनता है । सेही का काँटा बनाकर, मंत्र पढ़ते हैं उसके प्रभाव से बिच्छू काटने से पीड़ा नहीं होती ।

चौक पूर कर उस पर कलश रखा जाता है । मिट्टी के बर्तन, कई स्थानों का जल लाकर रखा जाता है । मौसम के फल और नया अन्न मिट्टी के बरतनों में भरकर चढ़ाते हैं ।

कथा है कि एक स्त्री द्वारा मिट्टी खोदने से सेही के बच्चे मर गये । फलस्वरूप उसके भी सात बेटे मर गये । महात्मा के उपदेश पर उसने यह व्रत किया और सेही के चित्र की पूजा की तो उसके बच्चे हुए जो जीवित बच गये ।

अहोई अष्टमी अशोक अष्टमी व्रत का ही तद्भव रूप है । (रंगीन चित्र सं.-19)

रमा एकादशी, तुलसी विवाह एकादशी

यह व्रत कार्तिक कृष्ण एकादशी को किया जाता है । रमा विष्णु पत्नी लक्ष्मी हैं, तुलसी भी विष्णु प्रिया हैं । इस व्रत को करने से मृत्यु को भी जीता जा सकता है ऐसा इसकी कथा में आया है । चन्द्रभागा के पति शोभन ने विवशता में यह व्रत किया था । उसकी मृत्यु के बाद उसकी पत्नी के द्वारा किये गये इस व्रत के प्रभाव से उसे पुनर्जीवन मिला ।

हरिप्रिया तुलसी का विवाह शालिग्राम से किया जाता है। तुलसी को वधू की तरह सजाया जाता है । एक सौ आठ परिक्रमा करके भोग, पकवान चढ़ाकर तब भोजन किया जाता है । चौक पूरा जाता है । कहीं कहीं भित्ति चित्र भी बनते हैं। किस प्रकार वृन्दा के पति जलन्धर को लोकहित में मारने के लिए विष्णु को शालिग्राम बनना पड़ा और वृन्दा को तुलसी वृक्ष, इसकी कथा कही जाती है । इसी प्रकार तुलसी कितनी हरिप्रिया हैं, उनका कितना महत्व है, इस आशय के गीत और कथाएँ होती हैं ।

धनतेरस, धनवन्तरि जयन्ती

कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को धन्वन्तरि जयंती और धनतेरस का त्यौहार होता है । इस दिन बर्तन, सोना, चाँदी, तथा अन्य मूल्यवान वस्तुएँ क्रय की जाती हैं ।

इसमें विष्णु और लक्ष्मी की कथा कही जाती है, जिसमें लक्ष्मी जी ने किसी के खेत से बिना पूछे सरसों के फूल तोड़कर बालों में लगा लिये थे, जिसके दण्ड स्वरूप वे उस खेत के मालिक गरीब ब्राम्हण के यहाँ बारह वर्ष तक सेविका बनकर रहीं । उस ब्राम्हण को धन-धान्य से सम्पत्र कर दिया और उपदेश दिया कि इस त्रयोदशी को जो लक्ष्मी की पूजा करेगा उसे धन की कमी नहीं होगी । इसी दिन लक्ष्मी जी का बारह वर्ष पूरा हुआ था ।

इस दिन नदी तालाब में यमराज के लिए दीपदान का विशेष महत्व है । इससे अल्पायु में मृत्यु का भय नहीं रहता । इसी तिथि को समुद्र मंथन से धन्वन्तरि निकले थे अतः इसमें धनवन्तरि की कथा कही जाती है । अनाज की राशि पर दीपक जलाया जाता है । चौक और भित्तिचित्र बनते हैं । (रंगीन चित्र सं.-20)

दीवाली - लक्ष्मी

नरक चतुर्दशी, रूप चौदस, हनुमान जयंती

कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को नरक चतुर्दशी मनायी जाती है । इसे छोटी दीपावली भी कहते हैं । इसका सम्बन्ध भी नरकाधिपति यमराज से माना जाता है । इस दिन घूरे पर दिया जलाया जाता है । नाली पर दिया जलाते है । कहते हैं कि इसी दिन नरकासुर का वध करके श्रीकृष्ण ने उसके बन्दी गृह से सोलह हजार रानियों को मुक्त करके उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा दी थी ।

इस दिन सूर्योदय से पूर्व जगकर, हल में लगी मिट्टी व तेल लगाकर स्नान करके श्रीकृष्ण पूजा का विधान है । ऐसा करने से रूप सौन्दर्य की वृद्धि होती है । इसीलिए इसे रूप चौदस भी कहते हैं ।

सीता जी ने इसी दिन हनुमान जी को मोतियों की माला उपहार में दी थी, जिसमें राम नाम न होने से हनुमान जी को प्रसन्नता नहीं हुई । तब सीता जी ने अपने माथे का सिन्दूर उन्हें देकर कहा कि इसे लगाने से तुम अजर अमर रहोगे । तभी से इस तिथि को हनुमत जयंती के रूप में भी मनाते हैं और उन्हें तेल सिन्दूर लगाया जाता है । इसे छोटी दीपावली भी कहते हैं ।

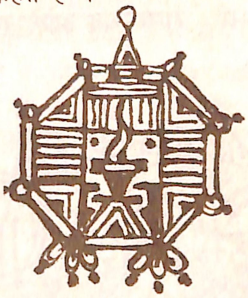

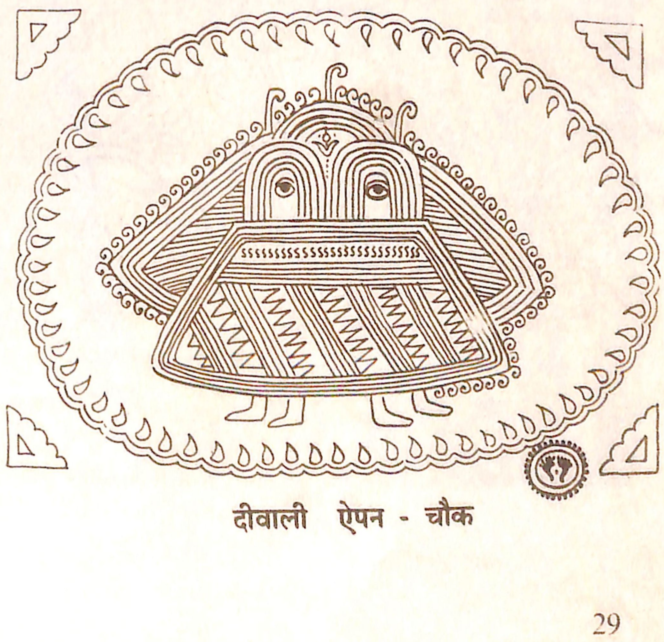

दीवाली ऐपन - चौक

दीपावली

कार्तिक की अमावस्या को प्रकाश पर्व दीपावली पड़ती है। यह पर्व वैसे तो धनतेरस से प्रारम्भ हो जाता है । इसमें धन वैभव की देवी लक्ष्मी और सकल कामना पूर्ण करने वाले गणेश का पूजन होता है । दीपों की पंक्ति सजाकर महालक्ष्मी के आगमन की कामना की जाती है । लक्ष्मी इस रात्रि को विचरण करती हैं और स्वच्छ घर में दीप मालाओं से प्रसन्न होकर प्रवेश करके निवास करती हैं ।

अतः घर को स्वच्छ किया जाता है । भाँति-भाँति के चौक और भित्ति चित्रों से घर को सजाया जाता है । खील, बतासे, चीनी की मिठाई तथा विभिन्न मिष्ठान्न, फल, मेवे से लक्ष्मी, गणेश का भोग लगता है । दीपावली को एक बड़ा दीपक आंगन में पहले जलाकर रख दिया जाता है । और उसी पर काजल पार कर सबकी आँखों में लगाया जाता है । आज की रात सभी मंत्र-तंत्र सिद्ध किये जाते हैं । जिसका जो व्यवसाय है उसे आज अवश्य करता है । इसे अमावस जगाना कहते हैं । दीपावली की अनेक कथाएँ और उत्सव की विविध रीतियाँ प्रचलित हैं। उसी प्रकार इससे सम्बन्धित आलेखनों में भी विविधता है ।

पूजा चौक

दीपावली की रात बीतने से पहले ब्रह्म मुहूर्त्त में सूप बजाकर दरिद्र भगाया जाता है । चौराहे पर झाड़ू से साफ करके एक दीपक जला दिया जाता है । जिससे लक्ष्मी जी आकर्षित होकर आयें। (रंगीन चित्र सं.-21)

अन्नकूट गोबर्द्धनपूजा

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को भगवान श्रीकृष्ण ने ग्रामवासियों के साथ गोबर्द्धन की पूजा की थी । उसी की स्मृति में इस पर्व पर छप्पन भोग बनाये जाते हैं । छप्पन भोग पूरा करने के लिए समस्त मौसमी सब्जियाँ, समस्त दालें और अन्न सम्मिलित करके भोजन बनता है । द्वार पर गाय के गोबर से गोबर्धन बनाते हैं, उसके ऊपर रुई और सीकें लगायी जाती हैं ।

गोबर्द्धन अलग-अलग क्षेत्रों में भिन्न प्रकार से बनते हैं । कहीं आँगन में गोबर से घर बनाकर उसके बाहर चौकीदार, कुत्ता, गाय, बिल्ली, कृषि के कार्य, गृहकार्य, गोरस कार्य करते नर-नारी बनाये जाते हैं ।

स्त्री-पुरुष और बालक बनाया जाता है । कौड़ी की आँख बनाते हैं उसके पेट में गढ़ा बनाकर उसमें दूध भरते हैं । सायंकाल इन आकृतियों को मिटाकर उसी गोबर से मानव आकृति दरवाजे पर बनाते हैं, उसमें सींकें लगाकर पहाड़ के झाड़ झंखाड़ बनाते हैं। पेट में आला बनाकर उसमें दीपक जलाते हैं। कहीं-कहीं गोबर्द्धन की मानवाकृति पर ईट रखकर गोधन कूटते हैं ।स्त्रियाँ सभी भाई भतीजों को पहले शाप देती है, फलां को खाऊं, फिर कहती हैं कि जिनको-जिनको खाया उनकी आयु बढ़े, वे अमर हों । इसकी कई कथाएँ हैं जिनमें विभिन्न अभिप्राय व्यक्त हुए हैं ।

गोबर्धन

चिरैया गौर

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को ही यह व्रत भी सुहागिनें करती हैं। शरद पूर्णिमा की रात खुले आकाश में रखे गये चावल को मौन रहकर पीसकर उसके आँटे से चिड़ियाँ, टिक्की, खड़ाऊं, पोथी-पत्रा आदि बनते हैं । एक चिड़िया के ऊपर आँटे का दीपक जला दिया जाता है । यह सारी आकृतियां और फरे बनाकर पानी में उबाल कर खाया जाता है । चिड़िया का सिर नहीं खाया जाता है । चिड़ियाँ केवल सुहागिनें खाती हैं। चिरैया गौर की कई कथाएँ और गीत हैं, जिसमें इसकी विधि, माहात्म्य का उल्लेख होता है ।

यम द्वितीया, भैया दूज

यह पर्व कार्तिक शुक्ल पक्ष की द्वितीया को मनाते हैं । इसमें यम और उनकी बहन यमुना की कहानी कही जाती है । भाई-बहन के अटूट प्रेम और उत्सर्ग की कथाएँ होती हैं । यमुना ने यम से यही वर माँगा था कि इस दिन जो भाई-बहन यमुना में साथ स्नान करें तो हर जन्म में भाई बहन हों और उनका अमंगल न हो । जो भाई बहन के घर इस दिन भोजन करें, उन्हें अकाल मृत्यु का भय न हो ।

बहन भाई को टीका करके उसकी कुशल कामना करती हैं और भाई उन्हें उपहार देते हैं । भाई दूज बहन का दिया हुआ रक्षा कवच है भाई के लिए । इसमें चौक पर विविध चित्रकारी की जाती है । वहाँ बैठकर बहनें भटकैया के काँटे से अपनी जिह्वा गोदती हैं कि भाई के लिए गोबर्द्धन पूजा के दिन जो शाप दिया, उसका प्रायश्चित कर रही हैं । जिसको शाप दिया उसकी आयु बढ़े ।

भैया दूज की पूजा करते समय कथा और भावपूर्ण गीत भी गाये जाते हैं । यम द्वितीया के चित्रों में यम-यमी, सगुन चिरैया यमुना, गाय, बैल, साँप, बिच्छू, बाघ, भाई-बहन, सूर्य-चाँद, शिव-पार्वती, कलश, दीपक, सतिया, कुम्हार का आँवा, कमल आदि बनते हैं । (रंगीन चित्र सं.-22)

सूर्य षष्ठी या डाला छठ

कार्तिक शुक्ल षष्ठी को सूर्य षष्ठी का व्रत किया जाता है । मूलतः यह व्रत बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश का है । इस पर्व पर नदियों के किनारे-किनारे मेला लग जाता हैं । स्त्रियाँ तीन दिनों तक व्रत रखती हैं । पंचमी को एक बार अलोना भोजन करके छठ को निर्जल व्रत रखती हैं । नदी तट पर विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ फल, और मिठाइयां डाला में (बाँस की टोकरी में) सजाकर अस्त होते सूर्य को अर्घ्य चढ़ाती हैं । इसीलिये इसे डाला छठ कहते हैं । दूसरे दिन प्रातःकाल उदय होते सूर्य को अर्घ्यदान करके व्रत पूर्ण करती हैं और अन्न-जल ग्रहण करती हैं ।

शास्त्रों में छठी माता को प्रकृति के छठे अंश से उत्पन्न षष्ठी माता, ब्रह्मा की मानसी कन्या देवसेना, कार्तिकेय की पत्नी "स्कन्द पत्नी" और विष्णुमाया आदि कहा गया है ।

भैया दूज

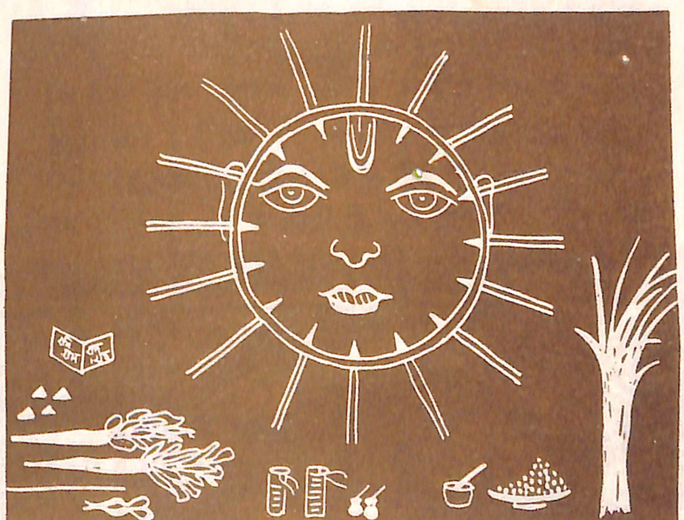

सूर्य षष्ठी

यह व्रत संतान की रक्षा और संतान कामना से किया जाता है । इसके गीत गाये जाते हैं, कहानी कही जाती है ।

व्रती स्त्रियाँ जब नदी जाने लगती हैं तो उनकें पति और पुत्र डाला लेकर साथ चलते हैं । नदी में घुटनों तक, कमर तक जल में खड़ी श्रद्धालु स्त्रियों की भीड़ दीप जलाये भगवान सूर्य की आराधना में तल्लीन रहती है । सप्तमी को प्रातः सूर्य के उदय होने की कामना करती हुई वह कहती है–'उवहु सुरुज मन, उवहु सुरुज मन, तुहैं बिनु जग अन्हियार ।'

षष्ठी को सायंकाल और सप्तमी को प्रातः काल सूर्य को अर्घ्य देकर ही जल ग्रहण किया जाता है । इस व्रत में बनने वाले चित्रों में सूर्य देवता, छठी माता, बालक, स्त्री, केला, आम आदि का चित्रण होता है ।

संतान सप्तमी

यह कार्तिक सुदी सप्तमी को पड़ती है । यह व्रत भी संतान और उसकी दीर्घायु की कामना से होता है । इसमें सप्तमी माता का चित्र बनाकर पूजा की जाती है । जिस स्त्री के संतान गर्भ में नष्ट हो जाती है या पैदा होकर मर जाती है उससे यह व्रत कराया जाता है । सात विवाहिता स्त्रियाँ नष्ट संतान वाली स्त्री पर जल डालती हैं और सूरज, चन्द्रमा और सभी देवी देवताओं से प्रार्थना करती हैं कि इसकी संतान की रक्षा करें । सूर्य और कपिला गाय की पूजा की जाती है । देवताओं को भोग लगाकर गाय को खिलाकर तब व्रती स्त्री भोजन करती है ।

नवान्न

अगहन बदी पंचमी को नवान्न का पर्व होता है । शुभ साइत में दही के साथ जौ की नई बाली का दाना मिलाकर परिवार के सभी लोग एक ही दिशा में मुंह करके (जिस दिशा में साइत बनी हो) खाते हैं और इसके बाद पूरे गाँव में प्रणाम करने जाते हैं । सभी बड़े आशीष देते हैं कि नयी फसल से घर में सुख समृद्धि आये, सद्भाव आये । सभी प्रजाजनों, घर और खेतों में काम करने वाले मजदूरों को भोजन कराया जाता है ।

सब परस्पर शुभ कामना करते हैं, "पुराना खा, नया धरा" अर्थात इतनी फसल हो कि नया न खाना पड़े पुराना खाया जाये और नये को पुराना होने के लिए रख दिया जाय ।

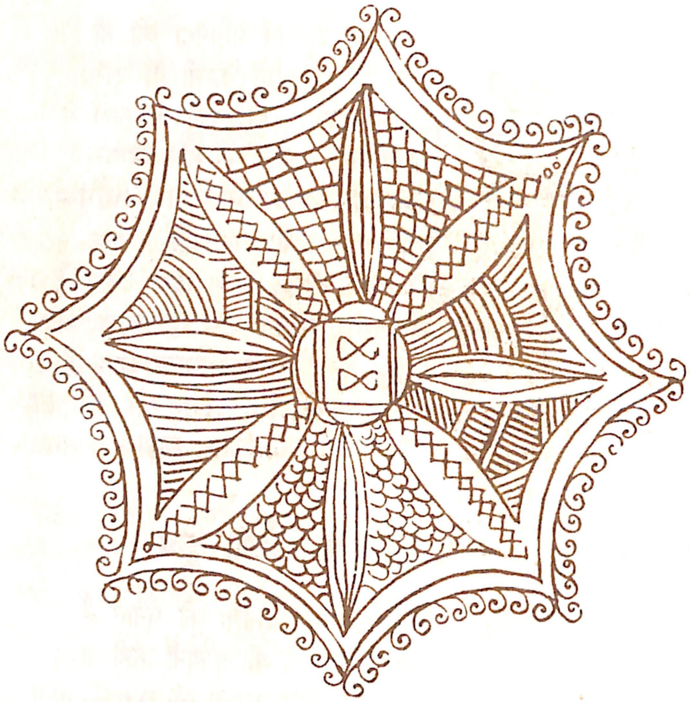

चौक

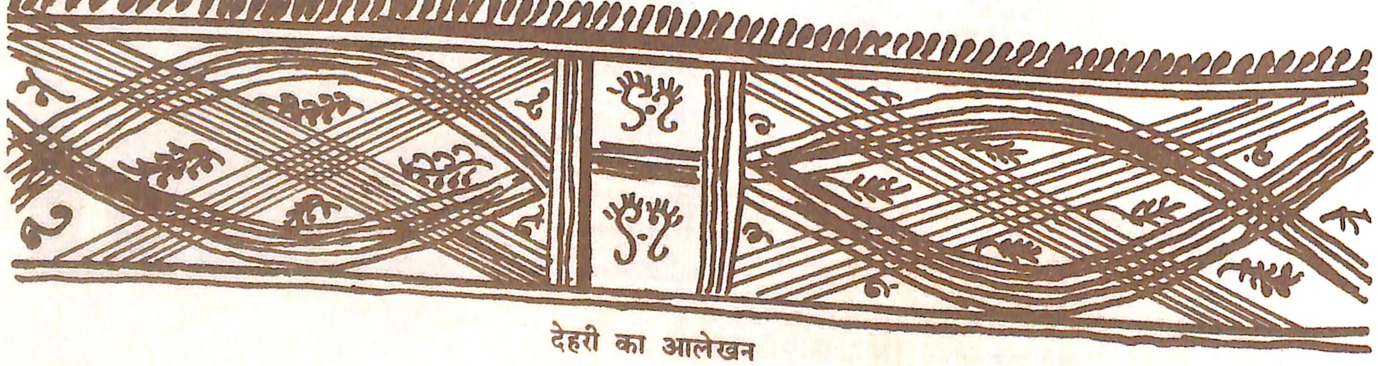

देहरी का आलेखन

काल भैरव अष्टमी

यह व्रत मार्गशीर्ष की कृष्ण अष्टमी को किया जाता है । पुराणों में वर्णन है कि इस दिन शिव जी नन्दी और गणेश से भी अलग होकर केवल शिव जी की पिण्डियों (शिवलिंग) में रहते हैं । इस व्रत में काल भैरव की पूजा होती है । काल भैरव रुद्र भगवान का ही अंश है । इन्हें महाकाल भी कहा जाता है । कहा जाता है कि क्रोध में आकर काल भैरव ने पंचानन ब्रह्मा का एक मुख अपने नाखून से काट दिया जिसके कारण वे अब चतुरानन ही रह गये हैं । काल भैरव का स्थान काशी में है।

ब्रह्मा का सिर काटने पर कालभैरव अशांत होकर भटकने लगे। तब शिव जी ने उन्हें शिप्रा नदी के किनारे उज्जैन में निवास करने का आदेश दिया । वहाँ महाकाल का मंदिर प्रसिद्ध है ।

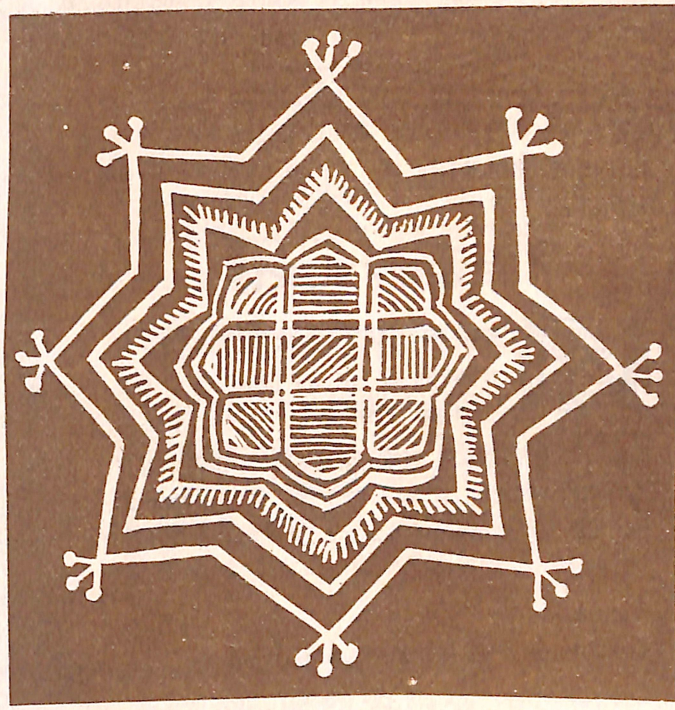

चौक

गोपाष्टमी

कार्तिक सुदी अष्टमी को गोपाष्टमी मनायी जाती है । इस तिथि में गायों को स्नान कराकर बछड़े सहित उनकी विविध विधि पूजा की जाती है । पूजन में धूप, दीप अक्षत, रोली, गुड़, जलेबी का भोग लगाकर आरती उतार कर गाय की परिक्रमा की जाती है, उसके पश्चात भोजन किया जाता है । कथा में आता है कि इसी दिन भगवान कृष्ण सर्वप्रथम गोचारण के लिए गये थे । इस पर्व पर गोशाला समितियों का गठन तथा उनकी ओर से इस दिन मेलों का आयोजन होता है । जगह-जगह से गायें आती हैं, उनकी वहाँ सामूहिक पूजा की जाती है ।

सभी लोग अपनी गोशालाएँ स्वच्छ करते हैं । गायों-बछड़ों के माथे पर हल्दी का टीका लगाकर उनके गले, सींगों को आभूषणों, रंगीन वस्त्रों से सजाकर जंगल में ले जाते हैं । यह भगवान कृष्ण की गोचारण लीला की स्मृति का पर्व है ।

अक्षय नवमी / आँवला नवमी

कार्तिक शुक्ल नवमी को अक्षय नवमी होती है । इस दिन के व्रत, पूजा, दान का फल अक्षय होता है ऐसा विश्वास है इस दिन ऑवले के पेड़ तले भोजन बनाकर ऑवलें की पूजा कर भोग लगाकर वहीं भोजन किया जाता है । कुछ लोग इसे आँवला नवमी भी कहते हैं । पुराणों में वर्णन आता है कि त्रेता युग का शुभारम्भ इसी तिथि को हुआ था ।

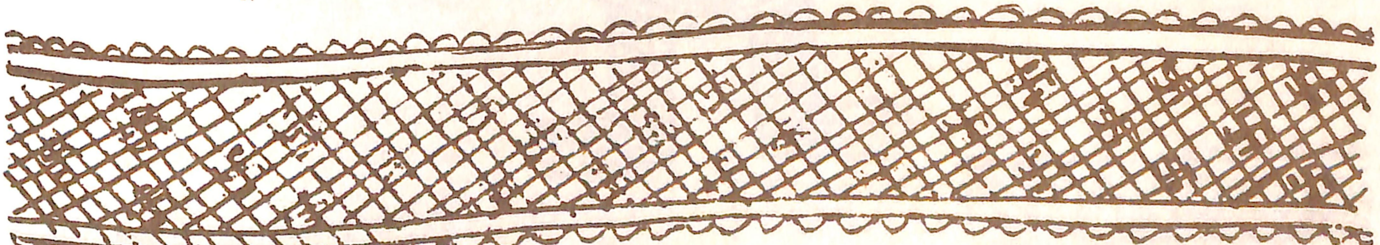

देहरी का आलेखन

आँवले के वृक्ष की परिक्रमा की जाती है । आँटे गुड़ के आँवले के आकार में गोलियाँ तलकर वही चढ़ाया जाता है । पेड़ के नीचे कथा कही जाती है ।

कहीं–कहीं लोग इसी दिन जगद्धात्री देवी की पूजा करते हैं । कुछ लोग तुलसी का विवाह शालिग्राम से इसी दिन करते हैं।

देवोत्थान एकादशी

कार्तिक शुक्ल एकादशी को देवोत्थान एकादशी के व्रत का विधान है । इसे प्रबोधिनी एकादशी, दिठवन आदि भी कहते हैं । इसी दिन शेषशायी विष्णु भगवान, जो देवशयनी एकादशी से सोते रहते हैं , वे जग जाते हैं । इस दिन पूरे घर आँगन की सफाई की जाती है जिससे कि घर में दारिद्र्य न छूटे । इसी दिन नयी फसल की ईख देवता को चढ़ाकर पहली बार चूसने के लिए गाँठ फोड़ी जाती है । गन्ने के सिरे से सूप बजाते हुए एकादशी की रात बिताकर प्रातः ब्राह्म मुहूर्त्त में दरिद्र भगाया जाता है । स्त्रियाँ घर के कोने–कोने में "ईस्सर आवैं दद्दिर जाय" कहते हुए सूप बजाती हैं । फिर सूप और गन्ने को अपने पीछे करके फेंक देती हैं । उसके बाद आकर स्नान पूजन करके व्रत का पारण करती हैं । कुछ लोग तुलसी विवाह एकादशी को ही करते हैं । कुछ लोग एकादशी को भी दीपमालिका सजाते हैं ।

इस दिन सत्यनारायण व्रत कथा पूजन होता है । देवोत्थान एकादशी में कई तरह के भित्तिचित्र और चौक बनते हैं । विष्णु भगवान के चरण ऐपन से अवश्य बनाये जाते हैं ।

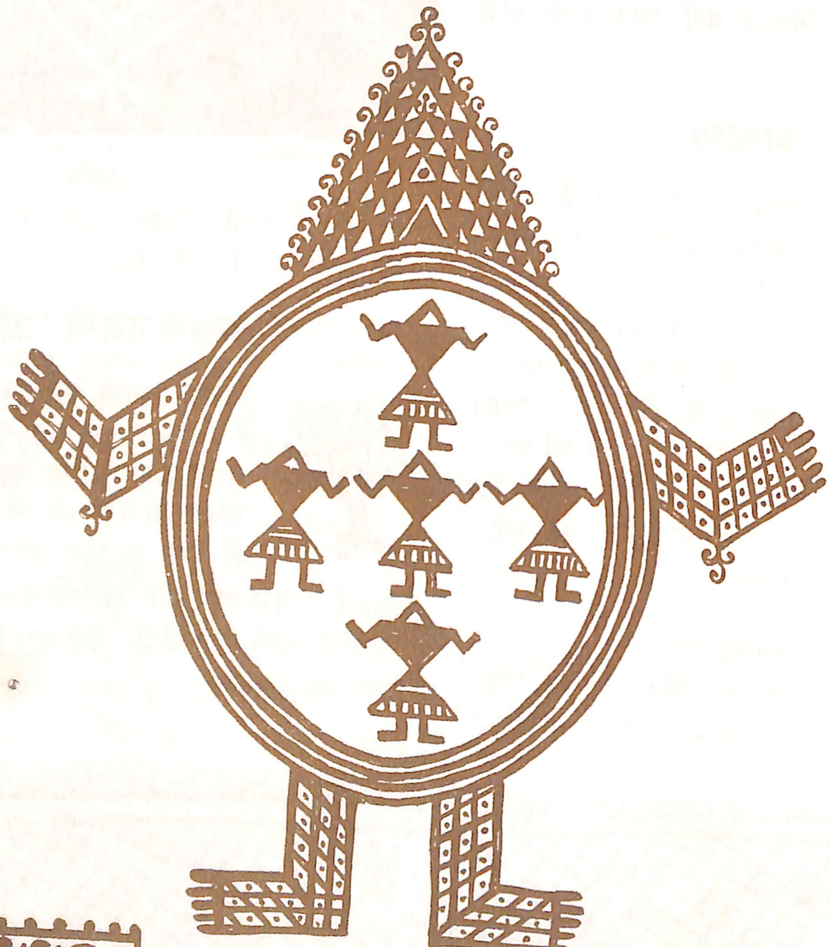

देव उठान

चौक

वैकुण्ठ चतुर्दशी

कार्तिक शुक्ल एकादशी से कार्तिक पूर्णिमा तक "भीष्म पंचक" होता है, जिसमें चतुर्दशी का विशेष महत्त्व होता है । जो लोग पूरे कार्तिक भर कार्तिक स्नान नहीं कर पाते, वे एकादशी से पूर्णिमा तक स्नान करते हैं तथा बैकुण्ठ चौदस मनाते हैं । बैकुण्ठ चौदस के दिन तारों की छाँव में स्नान करके नदी तटपर चौदह दीपक जलाते हैं । इसमें जो चित्र बनता है उसमें बैकुण्ठ धाम, देवता आदि बनते हैं ।

कार्तिक पूर्णिमा, त्रिपुरी पूर्णिमा

तुलसी विवाह

वैसे तो पूरे कार्तिक माह भर प्रातःकाल दान-ध्यान का विशेष माहात्म्य है । पूरे कार्तिक माह भर तुलसी का चौरा लीपकर उन्हें दीप दान किया जाता है । कार्तिक पूर्णिमा के दिन इस पूरे स्नान, दीपदान की पूर्णाहुति होती है । पूजन, सत्यनारायण व्रत कथा श्रवण, हवन होता है । औरं तुलसी का शालिग्राम से विवाह रचाया जाता है । पुराणों में वर्णन है कि इसी तिथि को गज-ग्राह की लड़ाई हुई थी और भगवान विष्णु ने स्वयं आकर गज का उद्धार किया था ।

कार्तिक पूर्णिमा के चित्र में गंगा, सत्यनारायण भगवान, तुलसी, गजग्राह की लड़ाई, विष्णु और उनका सुदर्शन चक्र आदि बनता है ।

इस दिन पवित्र नदियों में स्नान, दान का विशेष महत्त्व है । नदियों के तट पर विशाल मेला लगता है ।
(रंगीन चित्र सं.-23)

भीष्म पंचक / पंच भद्रम

कार्तिक पूर्णिमा को भीष्म-पंचक व्रत पूरा होता है। इसी दिन भीष्म पितामह पाण्डवों के वाण से जख्मी होकर शैय्या पर लेटे थे और लेटे-लेटे ही पाण्डवों को उपदेश दिया था, जो शान्तिपर्व महाभारत में वर्णित है।इस दिन लोग व्रत रखते हैं और भीष्म ने जो उपदेश दिया है,उसे पढ़ते हैं।

भीष्म पंचक की कथा भी कही जाती है कि भीष्म पितामह ने जब श्रीकृष्ण और पाण्डवों को राजनीति, धर्म, कर्म के विविध अंगों पर उपदेश दिया तब संतुष्ट और प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण ने कार्तिक शुक्ल एकादशी से पूर्णिमा तक के पाँच दिनों को भीष्म पंचक की संज्ञा देकर यह घोषणा की कि जो व्यक्ति इन पाँच दिनों तक स्नान, व्रत, पूजन, दान आदि पुण्य कार्य करेगा, उसे समस्त सुख-वैभव मिलेगा और वह परम गति को प्राप्त होगा ।

इसमें जो चित्र बनते हैं उसमें भीष्म पितामह की शरशय्या, श्रीकृष्ण, पाँचों पाण्डव, अर्जुन द्वारा वाण से गंगा प्रकट करने आदि का अभिप्राय व्यक्त होता है ।

पिड़िया व्रत/कात्यायनी व्रत

यह व्रत कार्तिक सुदी प्रतिपदा से लेकर अगहन सुदी प्रतिपदा तक चलता है । पूरे महीने भर कुमारी, विवाहिता सभी स्त्रियाँ नित्य दीवाल पर गोबर से मानवाकृति (पिड़िया) बनाकर, पिड़िया की कहानी सुनकर तब भोजन करती हैं। पिड़िया लगी दीवाल के पास बैठकर ही गीत गाती हैं और कहानी सुनती हैं । इन कहानियों और गीतों में भाई-बहन के प्रेम, एक दूसरे के लिए उत्सर्ग भाव का उल्लेख रहता है । व्रती स्त्रियाँ व्रत के अंतिम दिन नये चावल और गुड़ की खीर मौन रहकर खाती हैं । खाते समय किसी की आवाज कान में न पड़े इसलिए कान में रुई डाल लेती

हैं । अगहन सुदी द्वितीया को पिड़िया उतार कर तालाब में विसर्जित कर देती हैं । पिड़िया देवी की पूजा से भाई और पति की हर आपदा में रक्षा होती है, कन्याओं को वांछित वर मिलता है, ऐसा विश्वास है । पिड़िया संस्कृत के "पिण्डिका" शब्द का परिवर्तित रूप है ।

इस दिन कात्यायनी देवी की पूजा करने का संदर्भ श्रीमदभागवत् में भी है । पिड़िया कात्यायनी देवी का ही रूप है । श्रीकृष्ण को पतिरूप में प्राप्त करने के लिए सोलह हजार कन्याओं ने यमुना तट पर बालू की प्रतिमा बनाकर एक महीने तक पूजन किया था। सोलह पिड़ियाँ लगाकर पूजन करना षोडश मातृकाओं का पूजन है ।

पिड़िया में पन्द्रह दिन छोटी कहानी होती है पन्द्रह दिन बड़ी । एक प्रसिद्ध कहानी है पिड़िया की, जिसमें एक बहन रानी है उसके बच्चे नहीं जीते । दूसरी ब्राह्मणी है उसके सभी जीवित हैं, उसे रोने-नहाने की साध होती है । पर लाख कोशिशों के बाद भी उसके बच्चे नहीं मरते । वह कुश उखाड़कर रोने की साध पूरी करने चलती हैं तो वहाँ भी बच्चा मिल जाता है । यह पिड़िया के व्रत के ही प्रभाव से होता है।

उत्पन्ना एकादशी

यह अगहन कृष्ण एकादशी को पड़ती है । इसकी कथा है कि मुर दानव के अत्याचार से दुखी देवताओं ने शिव जी से रक्षा की प्रार्थना की ।

शिव जी ने विष्णु जी से अनुरोध किया । विष्णु ने अपने शरीर से एक सुन्दरी देवी को उत्पन्न किया जिस पर मोहित होकर मुर ने उस पर बल पूर्वक विजय प्राप्त करनी चाही । पर देवी ने उसका वध कर दिया । भगवान विष्णु ने देवी को एकादशी के दिन अपने शरीर से उत्पन्न किया था अतः उसका नाम "उत्पन्ना" रखकर कहा कि यह एकादशी तुम्हारे नाम से होगी तथा इस व्रत को करने से समस्त मनोकामनाएं पूर्ण होंगी। इस व्रत में विप्र सुदामा की कथा कही जाती है जिन्होंने सपत्नीक यह व्रत करके धन, वैभव, संतान प्राप्त किया था ।

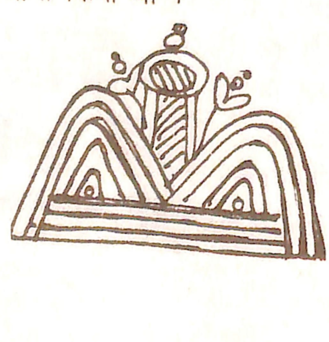

श्रीपंचमी/राम विवाह

अगहन मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी को राम विवाहोत्सव मनाया जाता है । इसीदिन श्रीराम ने शिव धनुष भंग किया था और श्री सीता ने राम का वरण किया था ।

इस तिथि को धनुष-यज्ञ उत्सव होता है, मेले लगते हैं रामायण पाठ और विवाह के गीत गाये जाते हैं । कोहबर रचे जाते हैं ।

उल्लेखनीय है कि अब मिथिला और अवध क्षेत्र में अगहन में विवाह नहीं किये जाते क्योंकि सीता जी को विवाह के बाद अपार कष्ट उठाना पड़ा था, जिसे लोकमन भूल नहीं पाता । (रंगीन चित्र सं.-24)

राम विवाह

मोक्षदा एकादशी

यह व्रत अगहन शुक्ल एकादशी को पड़ता है। इसी दिन भगवान श्रीकृष्ण ने महाभारत युद्ध से पूर्व मोह में पड़े अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था । इस व्रत में मन की शुद्धता पर विशेष बल दिया जाता है । इसमें प्रजा वत्सल राजा बैखानस की कथा कही जाती है । राजा ने स्वप्न में पिता को नरक भोगते देखा । दुखी होकर पर्वत पर गये । एक महात्मा ने बताया कि तुम्हारे पिता के नरक भोग का कारण है कि उन्होंने

दो स्त्रियों से विवाह किया, एक को स्नेह-मान देते थे, दूसरी को नहीं । उस दुखी स्त्री का जी दुखाने के पाप के कारण नरक भोग रहे हैं। तुम मोक्षदा एकादशी का व्रत रखो तो वे पाप मुक्त हो जायेंगे । राजा ने नियम पूर्वक यह व्रत किया । उनके पिता बैकुण्ठधाम चले गये ।

अग्रहायण पूर्णिमा / दत्तात्रेय जयन्ती

अगहन की पूर्णिमा को दत्तात्रेय जयंती मनाई जाती है । दत्तात्रेय अत्रिमुनि और सती अनुसूया के पुत्र हैं । इनके जन्म की कथा कही जाती है कि किस प्रकार सती अनुसूया की नारद जी से प्रशंसा सुन कर के उनके पतिव्रत और शील की परीक्षा लेने के लिए ब्रह्मा विष्णु महेश अपनी-अपनी पत्नी द्वारा प्रेरित होकर धरती पर विप्र वेश में आये और यह कहा कि हमें निर्वस्त्र होकर भोजन परोसिये । अनुसूया जी ने अत्रिमुनि के चरण धोकर वही जल इन तीनों पर डाल दिया । तीनों बालरूप हो गये । सती अनुसूया जी ने अपना दूध पिलाकर उन्हें तृप्त कर दिया । यही दत्तात्रेय हैं । ये ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों के एक साथ अवतार हैं ।

सफला एकादशी

यह पौष सुदी एकादशी है । इसका महत्त्व सब एकादशियों से अधिक उसी प्रकार बताया गया है जैसे यज्ञों में अश्वमेध यज्ञ, नागों में शेषनाग, नदियों में गंगा, पक्षियों में मोर । इसमें नारायण देव की पूजा होती है। अनार, नारियल, ऑवला, लवंग, सुपारी आदि का भोग लगाया जाता है । इसमें राजा महिष्मत और उनके पुत्र लुयंक की कथा कही जाती हैं । लुयंक को विवशता में इस दिन वन में कुछ न मिलने के कारण उपवास और जाड़े के कारण रात्रि जागरण करना पड़ा।

एकादशी चौक

नारायण ने प्रसन्न होकर उसे सद्बुद्धि और राज्य वैभव दिया ।

सफला एकादशी का व्रत-जागरण करने से समस्त मनोरथ सफल होते हैं ।

पुत्रदा एकादशी

यह पौष सुदी एकादशी है । इस व्रत को करने से संतान लाभ होता है । इसमें राजा सुकेतु की कहानी कहते हैं जो निःसंतान होने के कारण अपनी जीवन लीला ही समाप्त कर देना चाहते थे । वे जंगल चले गये तो वहाँ एक मुनि के उपदेश से यह व्रत किया और उनकी संतान की कामना पूर्ण हुई ।

सुरूपा द्वादशी

यह पौष कृष्ण द्वादशी को पड़ती है । इस व्रत को करने से दिव्य कान्तियुक्त सौंदर्य की प्राप्ति होती है । इसमें इसी भाव की कथा कही जाती है । देवी रुक्मिणी को कभी अपने रूप का अहंकार हो गया और सास के प्रति कोई प्रमाद हो गया । श्रीकृष्ण की माता ने कुपित होकर कृष्ण का विवाह किसी कुरूप कन्या से करने की ठान ली । भगवान कृष्ण को भी नारद जी ने इस संकट से उबारा और बोले कि रूप के अहंकार में लक्ष्मी जी ने महर्षि दुर्वासा का परिहास उड़ाया था । क्रुद्ध ऋषि के शाप से वे सत्यभामा के रूप में धरती पर जन्म ले चुकी हैं । श्रीकृष्ण ने सत्यभामा से विवाह करके माँ की आज्ञा का पालन किया । माता ने रुक्मिणी से कहा कि तुम सत्यभामा को अपने सुरूपा एकादशी व्रत का कुछ पुण्य दे दो जिससे उसकी कुरूपता दूर हो जाय । पर रूक्मिणी नहीं राजी हुई । सबके सिखाने पर सत्यभामा ने मुँह दिखाई में रूक्मिणी जी से व्रत पुण्य का कुछ अंश ही माँग लिया । रूक्मिणी ने उनकी इच्छा पूरी की और सत्यभामा रूप कांति युक्त हो गयीं ।

इसमें प्रातः काल गाय का ताजा गोबर धरती पर गिरने से पहले ही किसी पात्र में इकट्ठा कर लिया जाता है । इसे

हैं । अगहन सुदी द्वितीया को पिड़िया उतार कर तालाब में विसर्जित कर देती हैं । पिड़िया देवी की पूजा से भाई और पति की हर आपदा में रक्षा होती है, कन्याओं को वांछित वर मिलता है, ऐसा विश्वास है । पिड़िया संस्कृत के "पिण्डिका" शब्द का परिवर्तित रूप है ।

इस दिन कात्यायनी देवी की पूजा करने का संदर्भ श्रीमदभागवत् में भी है । पिड़िया कात्यायनी देवी का ही रूप है । श्रीकृष्ण को पतिरूप में प्राप्त करने के लिए सोलह हजार कन्याओं ने यमुना तट पर बालू की प्रतिमा बनाकर एक महीने तक पूजन किया था। सोलह पिड़ियाँ लगाकर पूजन करना षोडश मातृकाओं का पूजन है ।

पिड़िया में पन्द्रह दिन छोटी कहानी होती है पन्द्रह दिन बड़ी । एक प्रसिद्ध कहानी है पिड़िया की, जिसमें एक बहन रानी है उसके बच्चे नहीं जीते । दूसरी ब्राह्मणी है उसके सभी जीवित हैं, उसे रोने–महाने की साध होती है । पर लाख कोशिशों के बाद भी उसके बच्चे नहीं मरते । वह कुश उखाड़कर रोने की साध पूरी करने चलती हैं तो वहाँ भी बच्चा मिल जाता है । यह पिड़िया के व्रत के ही प्रभाव से होता है।

उत्पन्ना एकादशी

यह अगहन कृष्ण एकादशी को पड़ती है । इसकी कथा है कि मुर दानव के अत्याचार से दुखी देवताओं ने शिव जी से रक्षा की प्रार्थना की ।

शिव जी ने विष्णु जी से अनुरोध किया । विष्णु ने अपने शरीर से एक सुन्दरी देवी को उत्पन्न किया जिस पर मोहित होकर मुर ने उस पर बल पूर्वक विजय प्राप्त करनी चाही । पर देवी ने उसका वध कर दिया । भगवान विष्णु ने देवी को एकादशी के दिन अपने शरीर से उत्पन्न किया था अतः उसका नाम "उत्पन्ना" रखकर कहा कि यह एकादशी तुम्हारे नाम से होगी तथा इस व्रत को करने से समस्त मनोकामनाएं पूर्ण होंगी। इस व्रत में विप्र सुदामा की कथा कही जाती है जिन्होंने सपत्नीक यह व्रत करके धन, वैभव, संतान प्राप्त किया था ।

श्रीपंचमी/राम विवाह

अगहन मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी को राम विवाहोत्सव मनाया जाता है । इसीदिन श्रीराम ने शिव धनुष भंग किया था और श्री सीता ने राम का वरण किया था ।

इस तिथि को धनुष–यज्ञ उत्सव होता है, मेले लगते हैं रामायण पाठ और विवाह के गीत गाये जाते हैं । कोहबर रचे जाते हैं ।

उल्लेखनीय है कि अब मिथिला और अवध क्षेत्र में अगहन में विवाह नहीं किये जाते क्योंकि सीता जी को विवाह के बाद अपार कष्ट उठाना पड़ा था, जिसे लोकमन भूल नहीं पाता । (रंगीन चित्र सं.–24)

राम विवाह

मोक्षदा एकादशी

यह व्रत अगहन शुक्ल एकादशी को पड़ता है। इसी दिन भगवान श्रीकृष्ण ने महाभारत युद्ध से पूर्व मोह में पड़े अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था । इस व्रत में मन की शुद्धता पर विशेष बल दिया जाता है । इसमें प्रजा वत्सल राजा बैखानस की कथा कही जाती है । राजा ने स्वप्न में पिता को नरक भोगते देखा । दुखी होकर पर्वत पर गये । एक महात्मा ने बताया कि तुम्हारे पिता के नरक भोग का कारण है कि उन्होंने

दो स्त्रियों से विवाह किया, एक को स्नेह-मान देते थे, दूसरी को नहीं । उस दुखी स्त्री का जी दुखाने के पाप के कारण नरक भोग रहे हैं। तुम मोक्षदा एकादशी का व्रत रखो तो वे पाप मुक्त हो जायेंगे । राजा ने नियम पूर्वक यह व्रत किया । उनके पिता बैकुण्ठधाम चले गये ।

अग्रहायण पूर्णिमा / दत्तात्रेय जयन्ती

अगहन की पूर्णिमा को दत्तात्रेय जयंती मनाई जाती है । दत्तात्रेय अत्रिमुनि और सती अनुसूया के पुत्र हैं । इनके जन्म की कथा कही जाती है कि किस प्रकार सती अनुसूया की नारद जी से प्रशंसा सुन कर के उनके पतिव्रत और शील की परीक्षा लेने के लिए ब्रह्मा विष्णु महेश अपनी-अपनी पत्नी द्वारा प्रेरित होकर धरती पर विप्र वेश में आये और यह कहा कि हमें निर्वस्त्र होकर भोजन परोसिये । अनुसूया जी ने अत्रिमुनि के चरण धोकर वही जल इन तीनों पर डाल दिया । तीनों बालरूप हो गये । सती अनुसूया जी ने अपना दूध पिलाकर उन्हें तृप्त कर दिया । यही दत्तात्रेय हैं । ये ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों के एक साथ अवतार हैं ।

सफला एकादशी

यह पौष सुदी एकादशी है । इसका.महत्त्व सब एकादशियों से अधिक उसी प्रकार बताया गया है जैसे यज्ञों में अश्वमेध यज्ञ, नागों में शेषनाग, नदियों में गंगा, पक्षियों में मोर । इसमें नारायण देव की पूजा होती है। अनार, नारियल, आँवला, लवंग, सुपारी आदि का भोग लगाया जाता है । इसमें राजा महिष्मत और उनके पुत्र लुयंक की कथा कही जाती हैं । लुयंक को विवशता में इस दिन वन में कुछ न मिलने के कारण उपवास और जाड़े के कारण रात्रि जागरण करना पड़ा।

एकादशी चौक

नारायण ने प्रसन्न होकर उसे सद्बुद्धि और राज्य वैभव दिया ।

सफला एकादशी का व्रत-जागरण करने से समस्त मनोरथ सफल होते हैं ।

पुत्रदा एकादशी

यह पौष सुदी एकादशी है । इस व्रत को करने से संतान लाभ होता है । इसमें राजा सुकेतु की कहानी कहते हैं जो निःसंतान होने के कारण अपनी जीवन लीला ही समाप्त कर देना चाहते थे । वे जंगल चले गये तो वहाँ एक मुनि के उपदेश से यह व्रत किया और उनकी संतान की कामना पूर्ण हुई ।

सुरूपा द्वादशी

यह पौष कृष्ण द्वादशी को पड़ती है । इस व्रत को करने से दिव्य कान्तियुक्त सौंदर्य की प्राप्ति होती है । इसमें इसी भाव की कथा कही जाती है । देवी रुक्मिणी को कभी अपने रूप का अहंकार हो गया और सास के प्रति कोई प्रमाद हो गया । श्रीकृष्ण की माता ने कुपित होकर कृष्ण का विवाह किसी कुरूप कन्या से करने की ठान ली । भगवान कृष्ण को भी नारद जी ने इस संकट से उबारा और बोले कि रूप के अहंकार में लक्ष्मी जी ने महर्षि दुर्वासा का परिहास उड़ाया था । क्रुद्ध ऋषि के शाप से वे सत्यभामा के रूप में धरती पर जन्म ले चुकी हैं । श्रीकृष्ण ने सत्यभामा से विवाह करके माँ की आज्ञा का पालन किया । माता ने रुक्मिणी से कहा कि तुम सत्यभामा को अपने सुरूपा एकादशी व्रत का कुछ पुण्य दे दो जिससे उसकी कुरूपता दूर हो जाय । पर रूक्मिणी नहीं राजी हुईं । सबके सिखाने पर सत्यभामा ने मुँह दिखाई में रूक्मिणी जी से व्रत पुण्य का कुछ अंश ही माँग लिया । रूक्मिणी ने उनकी इच्छा पूरी की और सत्यभामा रूप कांति युक्त हो गयीं ।

इसमें प्रातः काल गाय का ताजा गोबर धरती पर गिरने से पहले ही किसी पात्र में इकट्ठा कर लिया जाता है । इसे

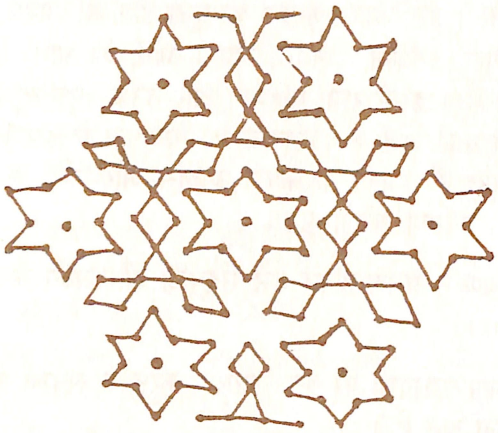

पूजा चौक

दिन भर सुखाकर शाम को विधिवत विष्णुपूजन करके उसी गोबर से एक सौ आठ हवि दी जाती है । इसमें रूक्मिणी, सत्यभामा, कृष्ण, विष्णु, नारद जी आदि का चित्र बनाया जाता है ।

ईषान व्रत

पौष सुदी चतुर्दशी को यह व्रत किया जाता है । पूरे दिन व्रत करके वेदी बनती है दूसरे दिन पूर्णिमा को वेदी को श्वेत वस्त्र से ढककर चारों दिशाओं में श्वेत-चावलों की चार ढेरियाँ लगती हैं । और बीच में ईषान की स्थापना की

लक्ष्मी पूजा

जाती है इसमें व्रत के बाद गोमूत्र का सेवन किया जाता है और पाँच वर्ष तक गोधन का दान किया जाता है ।

प्रथम वर्ष में एक गाय और प्रति वर्ष एक बढ़ाते हुए पाँचवें वर्ष में पाँच की संख्या में गायें दान की जाती हैं । हर वर्ष गायों के साथ एक ऐसा बैल भी दान किया जाता है जो हल में जोता जा चुका हो ।

इस व्रत में ब्रह्मा विष्णु महेश त्रिदेवों के साथ ईषान का पूजन किया जाता है ।

पौष पूर्णिमा स्नान

पौष पूर्णिमा से ही माघ प्रारम्भ हो जाता है । साथ ही भजन कीर्तन व्रत, दान का भी माहात्म्य बढ़ जाता है । पौष मास को खलमास कहा गया है । इसमें कोई शुभ कार्य नहीं किया जाता । पूर्णिमा से खलमास पूरा हो जाता है, पर मकर संक्रान्ति तक उसका प्रभाव माना जाता है ।

पौष मास के सभी रविवार (पूस रविवार)

पूरे माह के प्रत्येक रविवार को व्रत रखा जाता है । प्रातःकाल सूर्य को अर्घ्य देकर हवन किया जाता है । अलोना भोजन किया जाता है । इस व्रत के प्रभाव से आरोग्य और सुख की प्राप्ति होती है ।

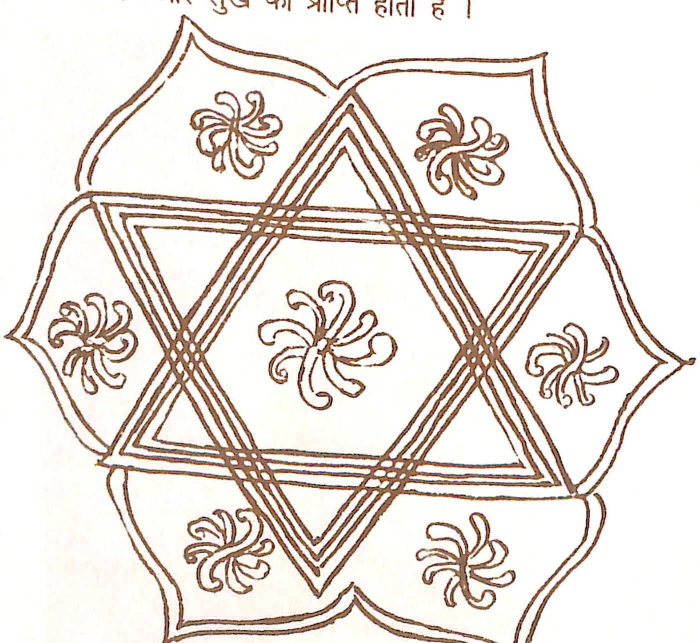

पूजा चौक

संकट चौथ/गणेश चौथ

माघ की कृष्ण पक्ष की चौथ को गणेश चौथ मनायी जाती है । इस दिन गणेश जी को तिल और गुड़ का पहाड़ अथवा "भेंड़ा" बनाकर चढ़ाया जाता है । दूसरे दिन उसी का प्रसाद वितरित किया जाता है । दिन भर निर्जल व्रत रखकर पुत्रवती स्त्रियाँ रात्रि में चन्द्र दर्शन करके गणेश का पूजन करती हैं फिर कथा सुनकर फलाहार करती हैं । यह व्रत संतान की कुशल कामना हेतु किया जाता है ।

इसमें गणेश जी की कथा होती है, सकट भगवान की कथा होती है । चार कथाएँ आवश्यक हैं । सकट भगवान का चित्र बनता है जिसमें गणेश जी, उनकी सवारी चूहा, देवरानी-जेठानी, बूढ़ी ग्वालिन, हलवाई आदि का चित्र बनता है । सकट देवी भी कही जाती हैं । सकट चौथ माता की पूजा और कथा होती है ।

षटतिला एकादशी

यह माघ कृष्ण एकादशी को पड़ती है । पौषमास में पुष्य नक्षत्र होने पर गोबर में तिल और कपास मिलाकर गोले बनाकर सुखा कर रख लिये जाते हैं । षटतिला एकादशी को इन्हीं गोलों का हवन किया जाता है। इसमें तिल का विशेष महत्त्व है । तिल पानी में डालकर उससे स्नान करके तिल का दान करते हैं । तिल से बने पदार्थ खाते हैं । पानी में भी तिल डालकर पीते हैं । इसमें जो कथा कही जाती है उसका संक्षेप है- एक वृद्धा स्त्री रात-दिन पूजा-पाठ, व्रत-उपवास करके दुर्बल हो गयी थी । विष्णु भगवान भिखारी बनकर परीक्षा लेने आये । दुर्बलता के कारण चिड़चिड़ी हो गयी वृद्धा ने क्रोध में आकर एक मिट्टी का ढेला भिक्षुक की झोली में डाल दिया । विष्णु जी उसे लेकर लौट आये । स्वर्ग आने पर वृद्धा को मिट्टी दान के कारण मकान तो मिल गया पर खाने-पीने को नहीं था ।

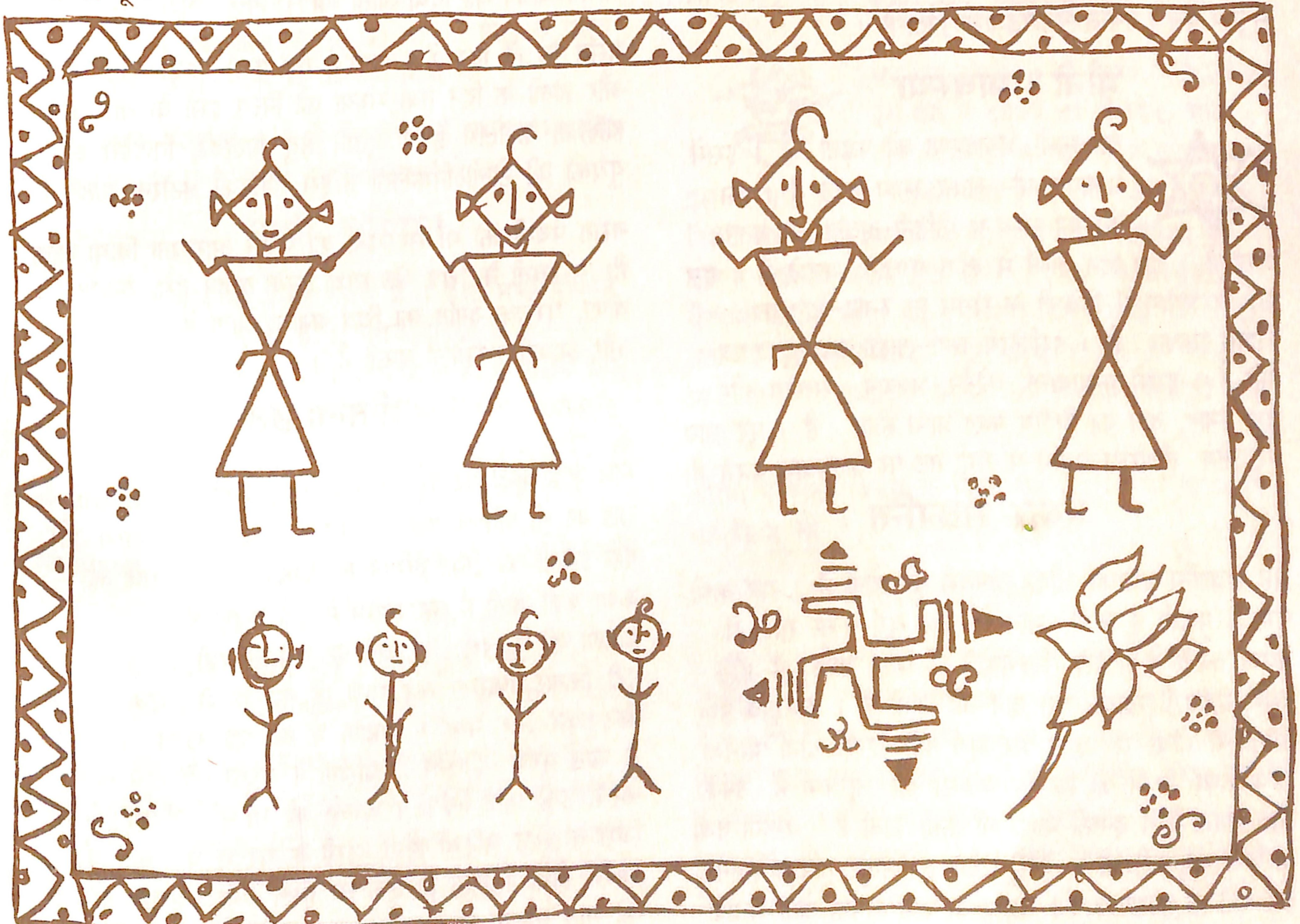

संकट चौथ

देवलोक की स्त्रियों ने उसे बताया कि तुमने षटतिला एकादशी का व्रत और दान नहीं किया है इसीलिए ऐसा हुआ है । उसने व्रत किया तो फिर उसे स्वर्ग के समस्त सुख प्राप्त हुए ।

जया एकादशी

यह माघ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी है । इसमें माल्यवान गन्धर्व और पुष्पवती अप्सरा की कहानी कही जाती है । दोनों एक दूसरे पर मुग्ध होकर संकेत से बातें करने लगे ।इन्द्र ने इसे देख लिया कि इसी कारण उनके सुरताल भंग हो रहें हैं। इन्द्र के शाप से ये दोनों पिशाच हो गये । ये इधर–उधर भटकते दुख भोग रहे थे, तभी जया एकादशी पड़ी और साधनहीन होने के कारण इनका अनायास उपवास, रात्रिजागरण हो गया और एकादशी व्रत का इन्हें फल मिल गया । ये पूर्व रूप में आकर इन्द्र लोक पहुंचे । इन्द्र ने आश्चर्य से इसका विवरण सुना कि किस तरह जया एकादशी व्रत के प्रभाव से ये शाप मुक्त हो गये । इस व्रत के पुण्य से जन्म जन्मान्तरों से मुक्त होकर मनुष्य कल्प पर्यन्त बैकुण्ठवासी होता है ।

मौनी अमावस्या

यह माघी अमावस्या को पड़ती है । इसमें भक्तगण मौन होकर स्नान करते हैं । इस व्रत का सम्बन्ध मोहिनी अवतार से बताया जाता है । इस दिन तीर्थों में लोग मुण्डन कराते हैं । इस पर्व पर प्रयाग में त्रिवेणी के संगम पर स्नान–दान का विशेष महत्त्व है । इसीलिये वहाँ लाखों श्रद्धालु एकत्र होते हैं । इसमें कथावार्त्ता, कीर्तन, प्रवचन, सत्संग और गंगा स्नान, दान का विशेष फल प्राप्त होता है । पूरे माघ भर लोग तीर्थराज प्रयाग में गंगा तट पर कल्पवास करते हैं।

मकर संक्रान्ति

यह संक्रान्ति प्रतिवर्ष चौदह जनवरी को होती है । यह कभी पूस में पड़ती है कभी माघ में जब सूर्य मकर राशि में प्रवेश करते हैं । इसे "खिचड़ी" भी कहा जाता है । इसमें खिचड़ी खायी तथा दान की जाती है । इस पर्व पर आँगन में गोबर से लीप कर सूर्य और उनकी दोनों पत्नियाँ छाया तथा संध्या जो कि विश्वकर्मा की पुत्रियाँ हैं, उनका चित्र बनता है । इनकी कथा भी कही जाती है । संध्या देवी अत्यन्त सुकुमारी थीं । वे सूर्य देव का प्रखर ताप न सहन कर पाने के कारण अपनी छाया के पास अपनी दोनों संतानों यम–यमी को छोड़कर वन में तपस्या करने चली गयीं । सूर्य भगवान विरह में दुखी होकर उन्हें खोजने चले । मार्ग में एक सुन्दरी मादा अश्व पर मोहित हो गये और अश्व रूप धारण कर उसके साथ रमण किया । इससे वैद्यराज अश्विनी कुमार का जन्म हुआ । छाया की कोख से भी सूर्य भगवान के दो संतानें हुई एक कन्या ताप्ती और पुत्र शनिदेव ।

बसंत पंचमी

माघ माह के शुक्ल पक्ष में बसंत पंचमी का पर्व मनाया जाता है। इस दिन बसंती पीला रंग का वस्त्र लोग पहनते हैं । बासंती मीठा चावल तथा पीले बेसन के लडडू खाये जाते हैं। कहीं माली, भॉट तथा कहीं दसौन्हीं या पुरोहित "डाली" (आम का बौर, जौ की बाल, अमरूद, बैर आदि) लाकर उसका दर्शन कराते हैं और दक्षिणा प्राप्त करते हैं । सुहागिन धोबन से सुहागिनें सुहाग लेती हैं और उसका पैर छूकर आर्शीवाद पाती हैं। चना की दाल और पीला भोजन धोबन को दिया जाता है ।

बसंत के ही दिन रेंड़ (अरंड का पेड़) गाड़ा जाता है और होली के दिन तक संध्या को नित्य इसी के चारों ओर होलिका के लिये ईधन जुटाने हेतु बालकों, किशोरों और युवकों की टोली निकलती है,इसे होलिका बटोरना कहते हैं।

बसंत पंचमी को माँ सरस्वती का पूजन आराधना किया जाता है। सरस्वती के चित्र के साथ उनके वाहन हंस, कमल, वीणा, पुस्तक आदि का चित्र बनाया जाता है । अल्पना और आकर्षक रंगोली बनती है ।

शीतला छठ

माघ सुदी षष्ठी को शीतला छठ मनाई जाती है । शीतला छठ को भी शीतल जल से नहाना, शीतल चीजें खाना और दही इमली का टीका लगाने का विधान है । इसमें जो कथा कही जाती है वह संक्षेप में इस प्रकार है । एक ब्राह्मण की पुत्रबधू पूरे वर्ष पर गर्भवती रही । एक दिन नदी किनारे फिसल कर गिरी तो पेट में से एक कुम्हड़ा छिटककर गिर गया । ब्राह्मण ने कुम्हड़ा खोला तो उसमें से साठ बच्चे निकले । ब्राह्मण ने बच्चों की खूब सेवा करके उन्हें पाल लिया । बच्चों की माँ ने प्रतिज्ञा की कि जिस के साठ बेटियाँ होंगी, उसी के घर में मेरे बेटों की शादी होगी । ऐसा ही एक घर मिल गया । गरीब ब्राह्मण की साठ बेटियाँ बहू बनकर आ गयीं ।

शीतला षष्ठी के दिन सास ने बहुओं से नहाने के लिए गरम पानी और गरम भोजन बनाकर लाने को कहा । बहुएँ नहीं लाना चाह रहीं थीं, पर सास के कुपित होने पर ले आयीं । सास ने गरम पानी से नहाकर गरम भोजन किया, जिससे पूरा परिवार, गोशाला की गायें आदि सभी समाप्त हो गये । ब्राह्मणी रोने पीटने लगी तो शीतला देवी वृद्धा वेश में आयीं और उसकी गलती बताकर कहा कि दही और इमली का टीका कुत्ते को लगाओ और कुटुम्ब के सभी लोगों और गायों को भी । ब्राह्मणी ने ऐसा ही किया तो उसका सारा कुटुम्ब और गायें जी गयीं । तबसे शीतला छठ मनायी जाने लगी ।

भीष्म अष्टमी

माघ सुदी अष्टमी को यह व्रत करके महाभारत के महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व भीष्म पितामह का पूजन और तर्पण किया जाता है। इसमें भीष्म की कथा कही जाती है कि इसी तिथि को गंगा–शान्तनु के पुत्र देवव्रत ने मत्स्यगंधा नामक धीवर कन्या का विवाह अपने पिता से कराने के लिए आजीवन ब्रह्मचारी रहने की भीष्म प्रतिज्ञा की थी । पिता ने प्रसन्न होकर उन्हें इच्छा–मृत्यु का वरदान दिया था ।

भीष्म सबके पितामह हैं । वे निःसंतान हैं पर हर भारतीय के पूर्वज और उनके तर्पण के अधिकारी हैं ।

माघी पूर्णिमा

भक्तगण पूरा माघ भर स्नान करते हैं । इसी माघी पूर्णिमा के दिन स्नान पूरा होता है । पवित्र नदियों के तट पर स्नान दान करने वालों का मेला लग जाता है । इसमें देव-गुरु वृहस्पति और विष्णु की पूजा का विशेष विधान है । माघ मास में प्रातः स्नान करने और आग न तापने का भी संकल्प लेते हैं । एक लोकगीत की पंक्तियाँ हैं:–

माघहि मास नहायों, अगिनि नाहीं ताप्यों । रामा विधि के भूख्यों इतवार ललन फल पायों हो ।।

(माघ मास में स्नान किया और अग्नि तापी नहीं ।
विधिवत इतवार का व्रत किया तभी पुत्र का फल मिला)

माघी पूर्णिमा को प्रयाग राज में कल्पवास पूरा होता है । यात्री वापस लौटते हैं ।कथा है कि इसी तिथि को भगवान विष्णु ने शंख–कन्या रूप में जन्म लिया था । राजा तक्ष को यह शंख कन्या तीर्थराज प्रयाग में यमुना में कमल पुष्प पर प्राप्त हुई थी ।

जानकी नवमी

फाल्गुन कृष्ण नवमी को सीता जी के प्राकट्य की तिथि है । इसीलिए सीता जन्म दिवस के रूप में इसे मनाते हैं ।

सीता जी के जन्म की कई पुराण कथाएँ और लोक कथाएँ कही जाती हैं । इसी दिन राजा जनक को हल की नोक के नीचे हराई से सीता जी मिली थीं ।

प्रातः स्नान करके व्रती स्त्रियाँ हल से जुते हुए खेत की मिट्टी से सीता जी की प्रतिमा बनाती हैं ।

धान का लावा, मखाना तथा गाय का दूध और गुड़ की पाग बनाकर सीता जी का भोग लगाया जाता है ।

पूजन के बाद हवन होता है । मंगल गीत, भजन कीर्त्तन, रामायण गायन, रामचरित मानस का पाठ आदि भी किया जाता है । कुछ लोग वैशाख शुक्ल नवमी को जानकी जयंती मानते हैं और यह व्रत करते हैं ।

विजया एकादशी

यह फाल्गुन मास की कृष्ण एकादशी है। इस व्रत में दशमी को ही सोने, चाँदी ताँबे या मिट्टी के कलश में जल भरकर इस पर पंच पल्लव रखकर नीचे सप्तधान्य और ऊपर किसी पात्र में जौ भरकर उसके ऊपर लक्ष्मीनारायण की प्रतिमा रखकर पूजन होता है । इसी घट के सम्मुख बैठकर कीर्तन, कथा करके रतजगा किया जाता है । यह व्रत करने से सारी बाधाएँ पार करके शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है इसीलिए इसका नाम विजया एकादशी कहा गया है ।

श्रीराम ने लंका विजय के लिये यह व्रत मुनियों के कहने पर किया था ।

महाशिवरात्रि

फाल्गुन कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी को महाशिवरात्रि का व्रत किया जाता है । कहा जाता है कि इसी तिथि को शिव पार्वती का विवाह हुआ था।निर्जल निराहार रहकर लोग शिव मंदिरों में बेलपत्र, धतूरा, बेर, गन्ने की गड़रियां, फल, भंग, आम का बौर, गंगाजल, दुग्ध आदि चढ़ाकर पूजा करते हैं ।

एक मत यह है कि फाल्गुन शुक्ल द्वादशी को भगवान शिव समुद्र मंथन से निकला विष पीने के कारण मूर्छित हो गये थे । उनकी कुशल कामना करते हुए इस त्रयोदशी को सारे देवताओं ने व्रत उपवास और रात्रि जागरण किया था इसीलिए इसकी स्मृति में यह व्रत किया जाता है ।

इसकी कई कथाएं पुराण कथाओं और लोक कथाओं के रूप में प्रचलित हैं जो इस व्रत पर कही जाती हैं और घर-घर फाग गीत गाये जाते हैं ।

दूसरे दिन फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को ब्रह्म मूहुर्त में ही उठकर भोजन बनाया जाता है जिसे बमभोले की रसोई कहते हैं । इस व्रत को करने से सारे शाप क्षय हो जाते हैं और मनोवांछित सिद्धि होती है ।

आमल की एकादशी / रंग भरनी एकादशी

फाल्गुन सुदी एकादशी को रंगभरनी या आमलकी एकादशी कहते हैं । इसमें आँवले के पेड़ के नीचे जल भरा कलश रख कर परशुराम जी की पूजा की जाती है । इसमें राजा चैत्ररथ की कथा कहते सुनते हैं, जो एकादशी पूजन कर रहे थे तभी एक शिकारी मॉस का लोथड़ा लिये हुए आया और थकान के कारण वहीं बैठ गया । रात भर उसने कथा सुनी और जागरण किया । इसके प्रभाव से वह राजा हो गया । एक दिन शिकार खेलने गया तो वहाँ रास्ता भटककर थक कर सो गया । कुछ लुटेरों ने उसे मारने के लिए प्रहार किया पर उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा जब उन्होंने और लोगों को लाकर आक्रमण किया तो राजा के शरीर से एक भयंकर स्त्री निकली जिसने उन सब को मार दिया ।

राजा की आँख खुली तो इतने शत्रुओं को मरा देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ । तभी आकाशवाणी हुई कि हे राजन! तुम पूर्व जन्म में व्याध थे, रंगभरनी आमलकी एकादशी के व्रत के पुण्य से आपकी रक्षा हुई है ।

इसमें तरह-तरह की चित्रकारी करके रंग भरा जाता है मेला । यह व्रत होली की पृष्ठभूमि तैयार करता है।

अन्य व्रत पर्व त्योहार

अन्य व्रत पर्व त्यौहार जो तिथि क्रम के अतिरिक्त हैं उनमें से भी कुछ महत्वपूर्ण व्रत पर्वों का उल्लेख आवश्यक है:-

सोमवती अमावस्या

जब भी कोई अमावस्या सोमवार को पड़ती है तब पीपल वृक्ष की पूजा, उसकी एक सौ आठ परिक्रमा करके सौभाग्यवती स्त्रियाँ व्रत करती हैं । परिक्रमा करते समय गिन कर मेवे, मिष्ठान्न या फल रख लिये जाते हैं । हर परिक्रमा में वही डालती जाती हैं ।

इसमें सोमा धोबन की कथा कही जाती है जिसने एक ब्राह्मण कन्या की सेवा से प्रसन्न होकर उसको अपना सुहाग देकर उसका वैधव्य का प्रारब्ध बदल दिया । इस कारण उसका अपना पति मर गया । किन्तु जैसे ही उसने पीपल की परिक्रमा पूरी की उसके पति जीवित हो गये । मार्ग में भी परिक्रमा के लिए उसे और कुछ नहीं मिला था, उसने ठीकरों को गिनकर उसी से परिक्रमा कर लिया था । एक चरवाहे बालक को वह ठीकरे संकल्प करके दे दिया तो वह सोना बन गया । किन्तु बालक अज्ञानता में वहीं छोड़ गया बस एक ठीकर गमछे में फंसकर साथ गया था ।इस व्रत के पूजन से अक्षय सौभाग्य की प्राप्ति होती है।

पुरुषोत्तम मास-मलमास

यह जिस किसी माह में पड़ता है एक माह अतिरिक्त जुड जाता है वर्ष में । इस पूरे अधिक मास में व्रत, पूजन, कथा, कीर्तन, दान पुण्य किया जाता है । इस माह में किये पुण्यकार्यों का फल अक्षय होता है ।यह सावन में पड़ता है तो शिव की विशेष पूजा होती है ।

प्रदोष व्रत

प्रत्येक माह में शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी को प्रदोष व्रत रखा जाता है । यह देवाधिदेव शिव और उनकी आदि शक्ति माँ पार्वती का व्रत है । इसमें दिन भर निर्जल रहकर सायंकाल प्रदोष काल में एक समय भोजन अवश्य करना चाहिये ।

सूर्य ग्रहण/ चन्द्र ग्रहण

सूर्य, चन्द्र ग्रहण होने पर कोई कार्य करने का निषेध होता

है । लोग बैठकर कीर्तन भजन करते हैं कि शीघ्र ग्रहण समाप्त हो। ग्रहण के बीच में स्नान करते हैं, फिर उग्रह होने के बाद स्नान करके दान किया जाता है । यह दान डोम को दिया जाता है डोम को राहु–केतु का स्वरूप माना गया है ।

गर्भवती स्त्रियों के प्रति विशेष सावधानी रखी जाती है कि वे ठीक मुद्रा में आराम से बैठकर भगवान का स्मरण करें। ग्रहण का प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़ने का भय रहता है। गर्भवती स्त्री के उदर भाग में गोबर और तुलसी लगा दिया जाता है जिससे राहु–केतु उसका स्पर्श न करें । यदि वह कुछ काटती है तो बच्चे का अंग चिर जाता है और सिलती है तो अंग जुड़ जाते हैं अतः ग्रहण की छाया से बचाने के लिए उसका विशेष ध्यान रखा जाता है ।

सूर्य ग्रहण के स्नान का कुरुक्षेत्र में बहुत विशाल मेला लगता है। सभी पवित्र नदियों पर भी मेला लग जाता है । नदी न मिलने पर तालाब पोखर, कुएँ पर ही लोग नहाते हैं ।

कुम्भ / अर्द्ध कुम्भ / महाकुम्भ

यह राशियों की स्थिति पर निर्भर करता है । सागर मंथन से जब अमृत कलश निकला तो उसे जहाँ–जहाँ रखा गया वहाँ उस नक्षत्र ग्रह योग के अनुसार कुम्भ या अर्द्ध कुम्भ अथवा महाकुम्भ का मेला लगता है । यह पर्व उस अमृत कलश की पावन स्मृति में मनाया जाता है । यह पर्व तीर्थराज प्रयाग, हरिद्वार और नाशिक में जिस वर्ष जहाँ का योग हो, वहाँ लगता है । प्रयाग में प्रतिवर्ष कुम्भ मेला लगता है ।

कपिला षष्ठी

साठ वर्ष में एक बार कपिला षष्ठी पड़ती है । इसमें नारदी की कथा कही जाती है । एक बार नारद जी को दो मछलियों को क्रीड़ा करते देख कर इच्छा हुई कि मैं भी विवाह करूँ। उन्होंने भगवान कृष्ण से कहा कि अपनी सोलह हजार आठ रानियों में से एक हमें दे दें । श्रीकृष्ण ने कहा कि जिस रानी के पास मैं न रहूं, उसे ले लीजिये। नारद जी पूरा घूम आये। सभी रानियों के साथ श्रीकृष्ण थे । नारद जी निराश होकर लौट रहे थे । संध्या पूजन का समय था । नदी में नहाने लगे पर मन रमा था कि कैसे विवाह हो? डुबकी लगायी और निकले तो स्वयं नारदी (स्त्री) बन गये थे । एक संन्यासी ने इनसे बल पूर्वक विवाह कर लिया । साठ वर्षों में नारदी के साठ पुत्र हुए । नारदी गृहस्थी की झंझटों से परेशान, कातर होकर भगवान से मुक्ति के लिए प्रार्थना करने लगी । भगवान प्रकट हुए, नारदी का दुख पूछने लगे । तब तक साठों बच्चे रोने चिल्लाने लगे थे । भगवान ने उन्हें चुप कराने के लिए एक–एक वर्ष का राजा बना दिया । इस प्रकार साठ वर्ष के बाद एक क्रम पूरा होता हैं, दूसरा पुनः शुरू होता है । जो श्रद्धा पूर्वक यह व्रत कर लेते हैं । उनके समस्त मनोरथ पूर्ण होते हैं।

आलेखन

1- होली

2- होली

3- बुढ़वा मंगल (होली के बाद का पहला मंगल)

4- शीतला सप्तमी

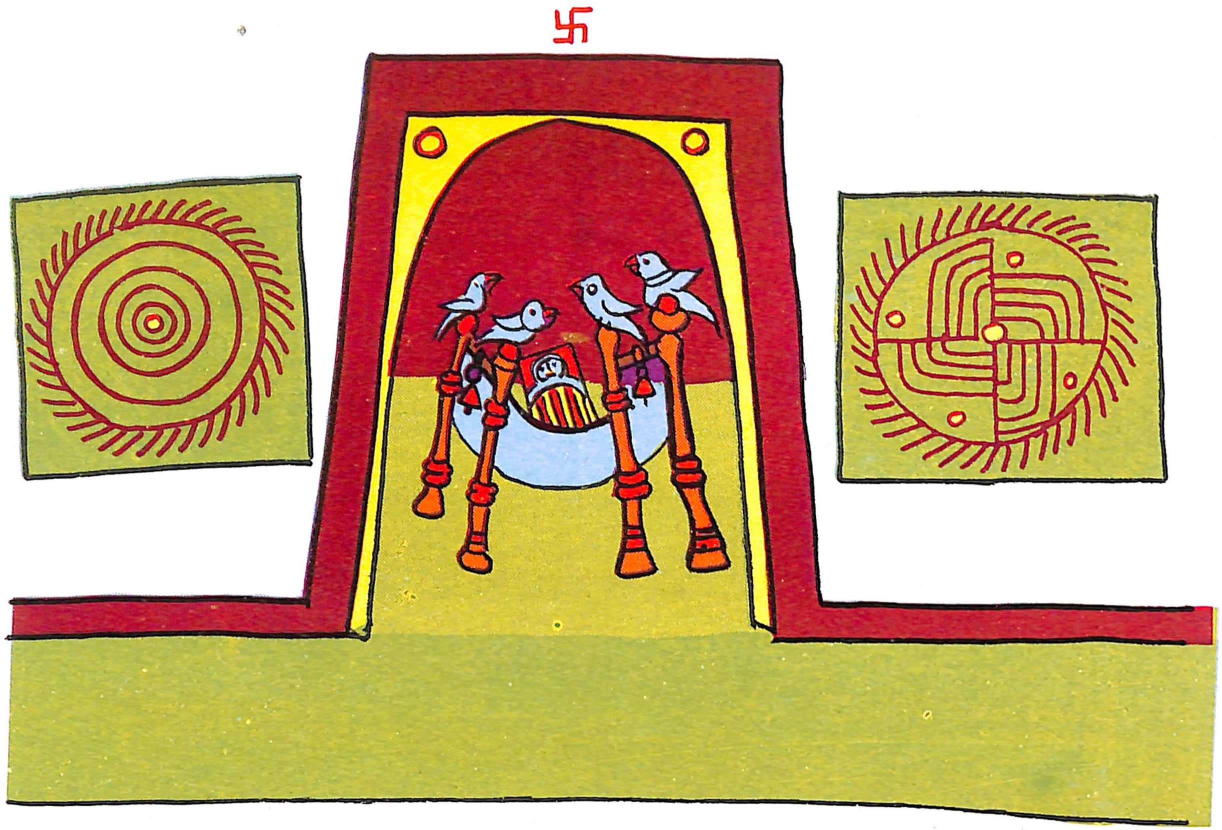

5- रामनवमी

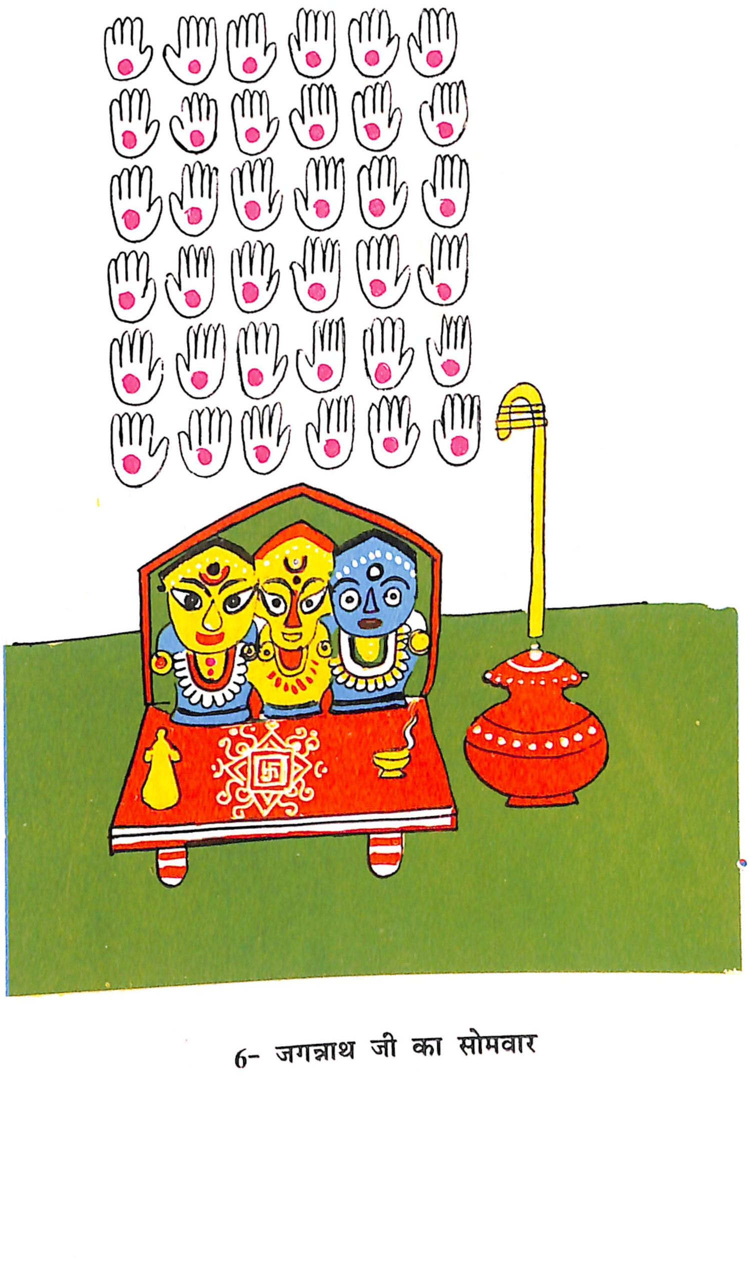

6- जगन्नाथ जी का सोमवार

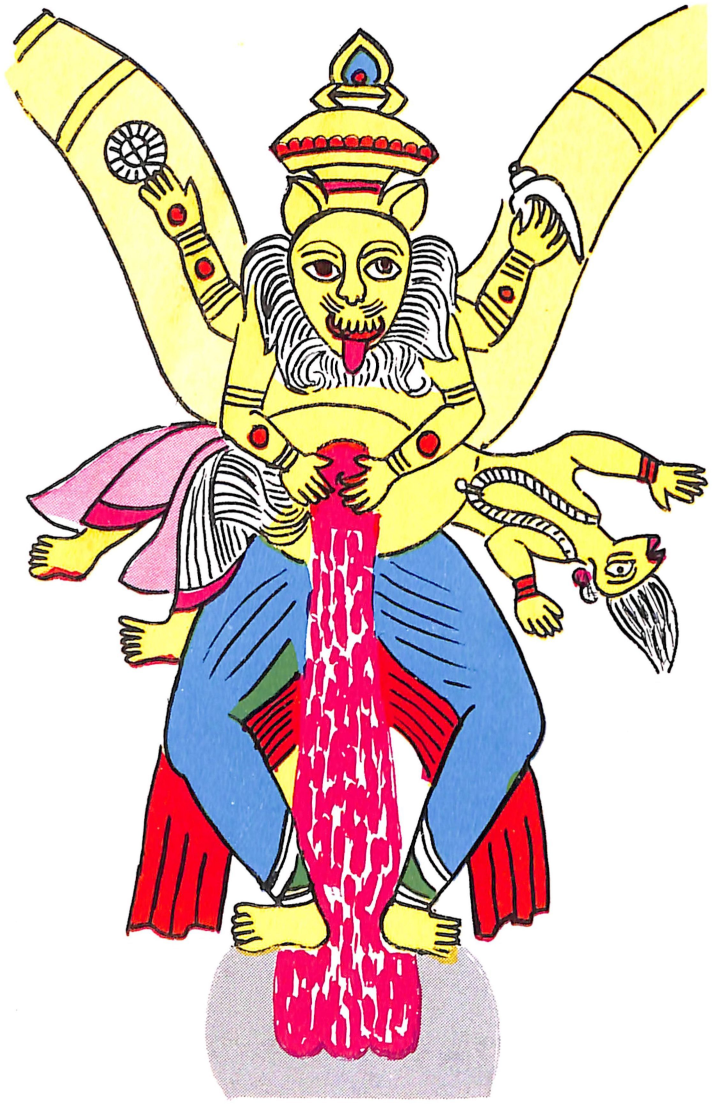

7- नरसिंह चतुर्दशी

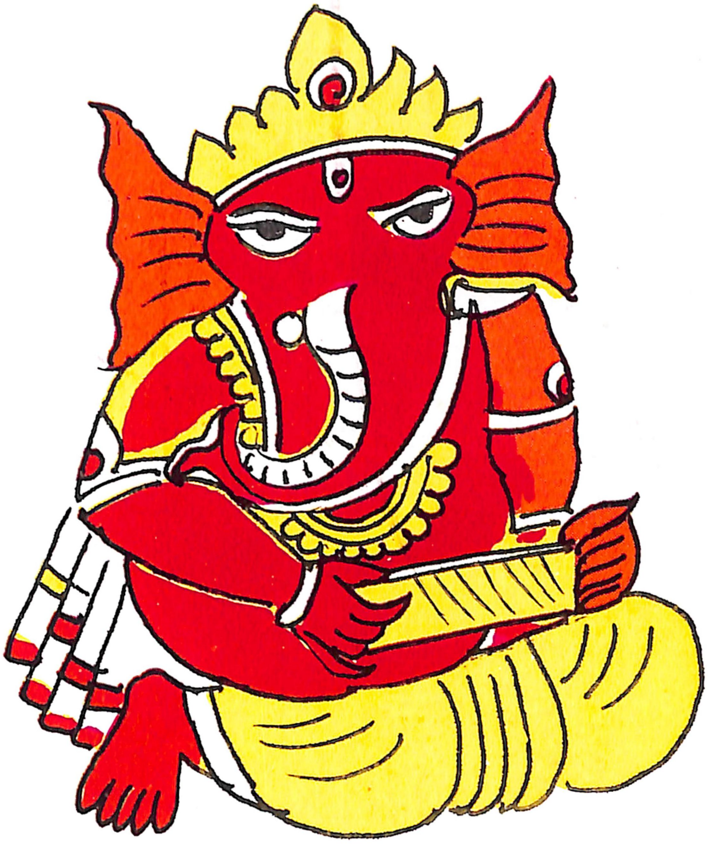

8- गणेश चतुर्थी/कलंकी चौथ

9- महावीर जी का मेला

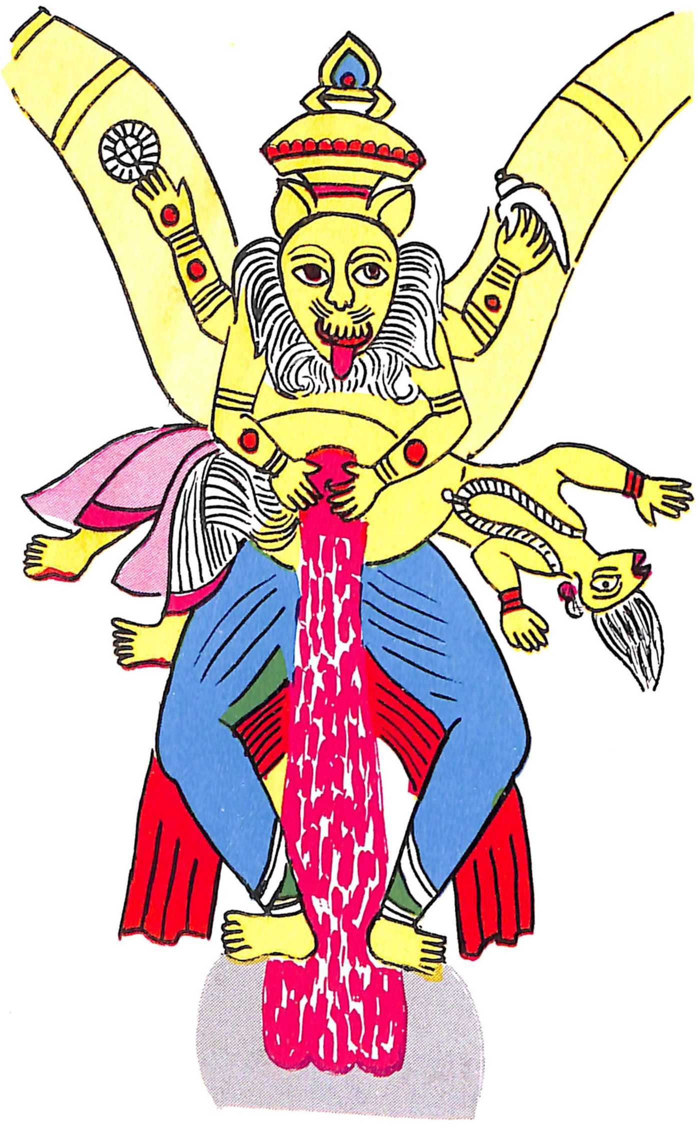

7- नरसिंह चतुर्दशी

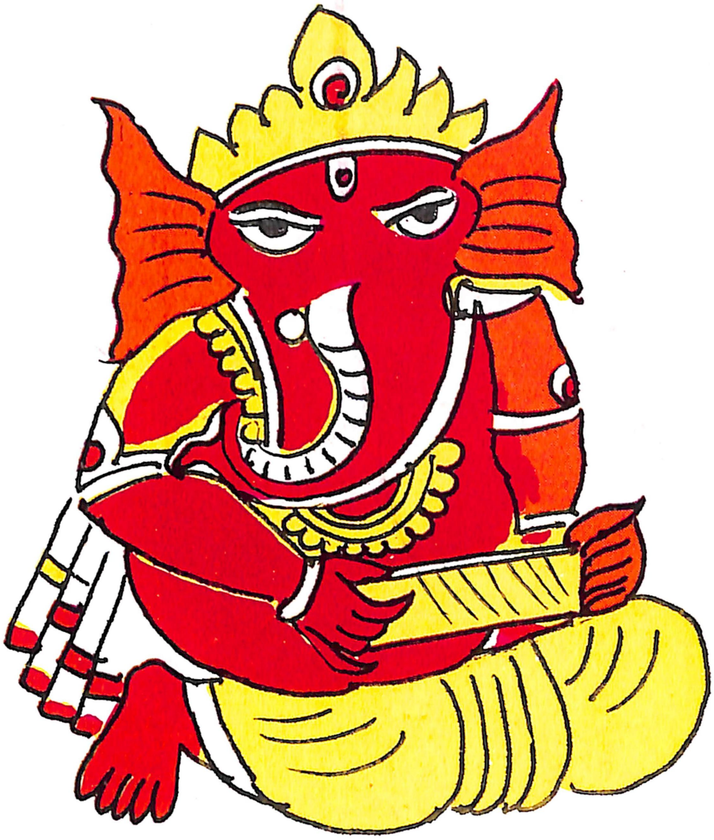

8- गणेश चतुर्थी/कलंकी चौथ

9- महावीर जी का मेला

10- वट सावित्री व्रत

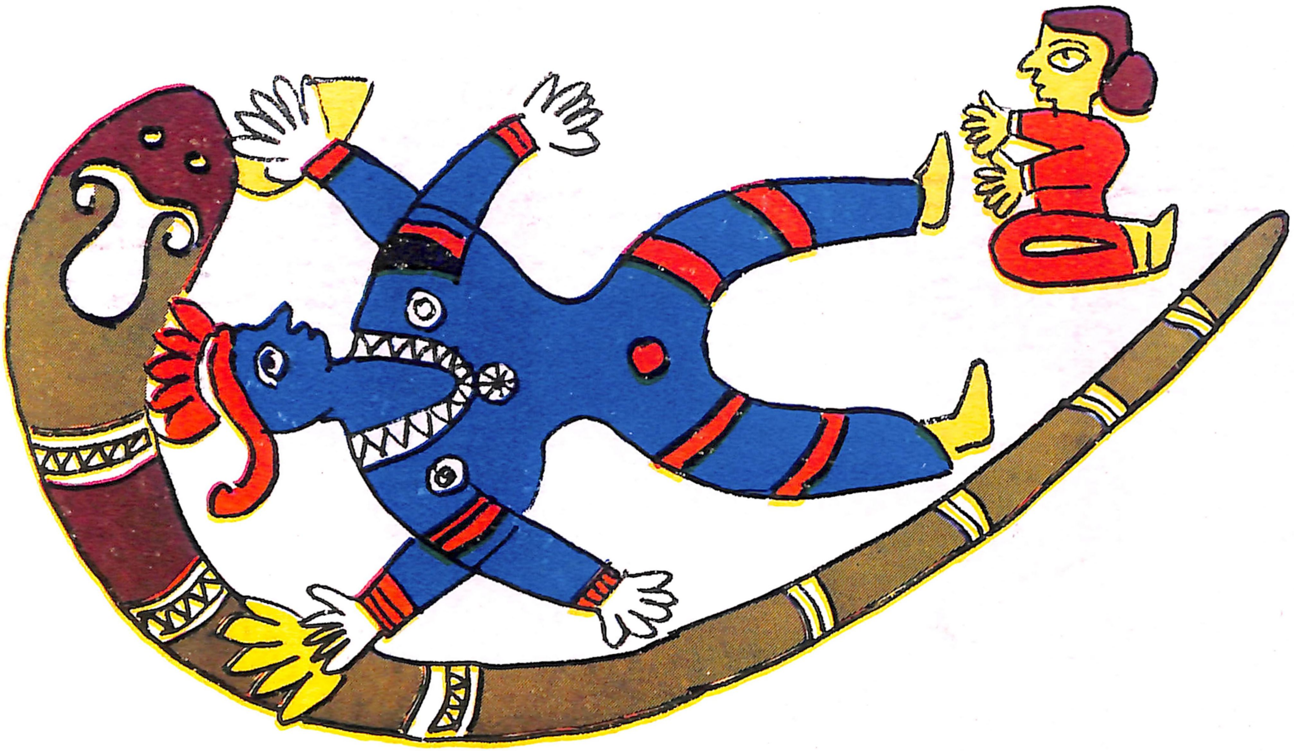

11- देवशयनी एकादशी

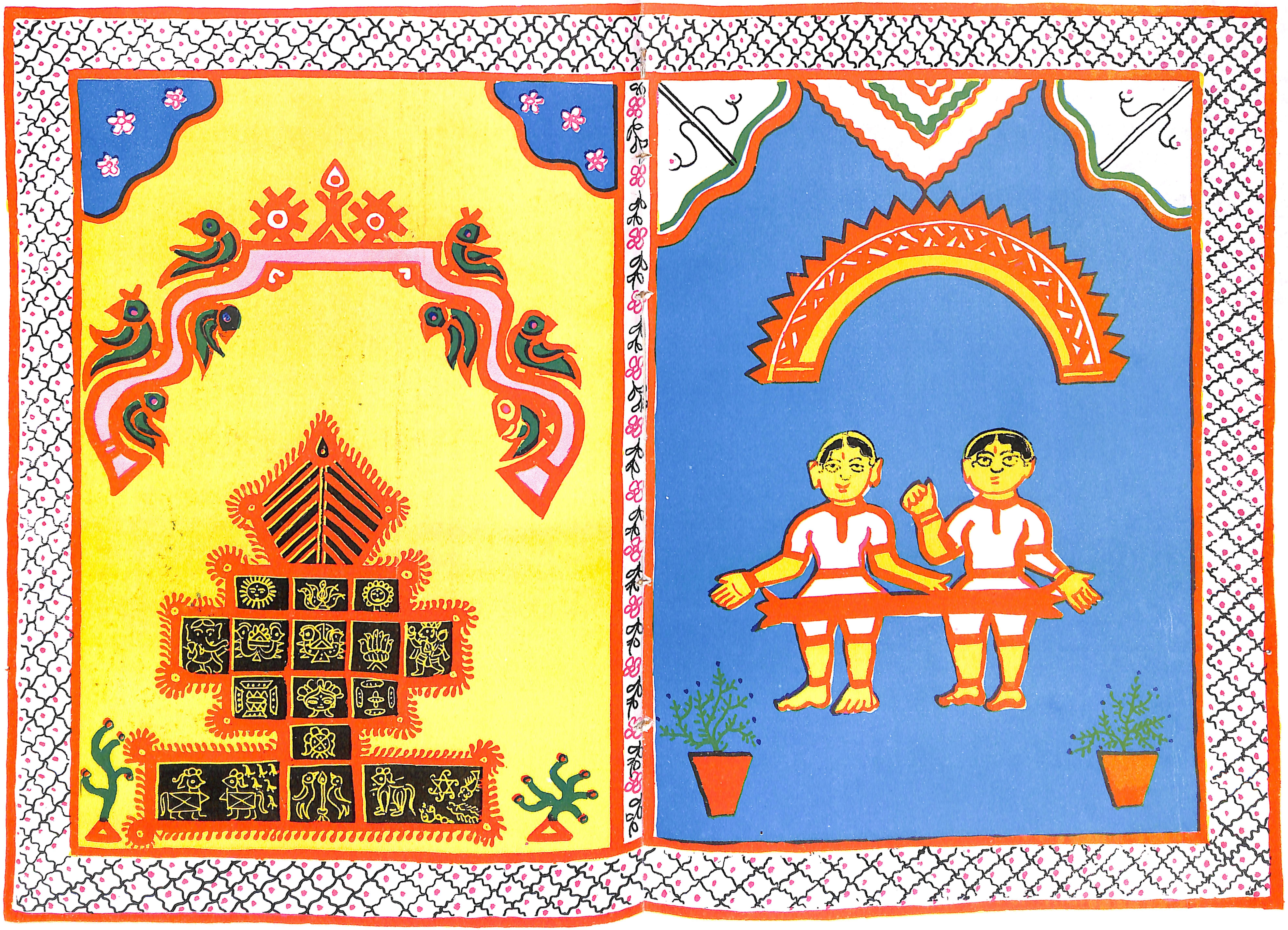

12- अषाढ़ी पूर्णिमा

13- कोकिला व्रत

14- कजरी व्रत

15- सत्य विनायक

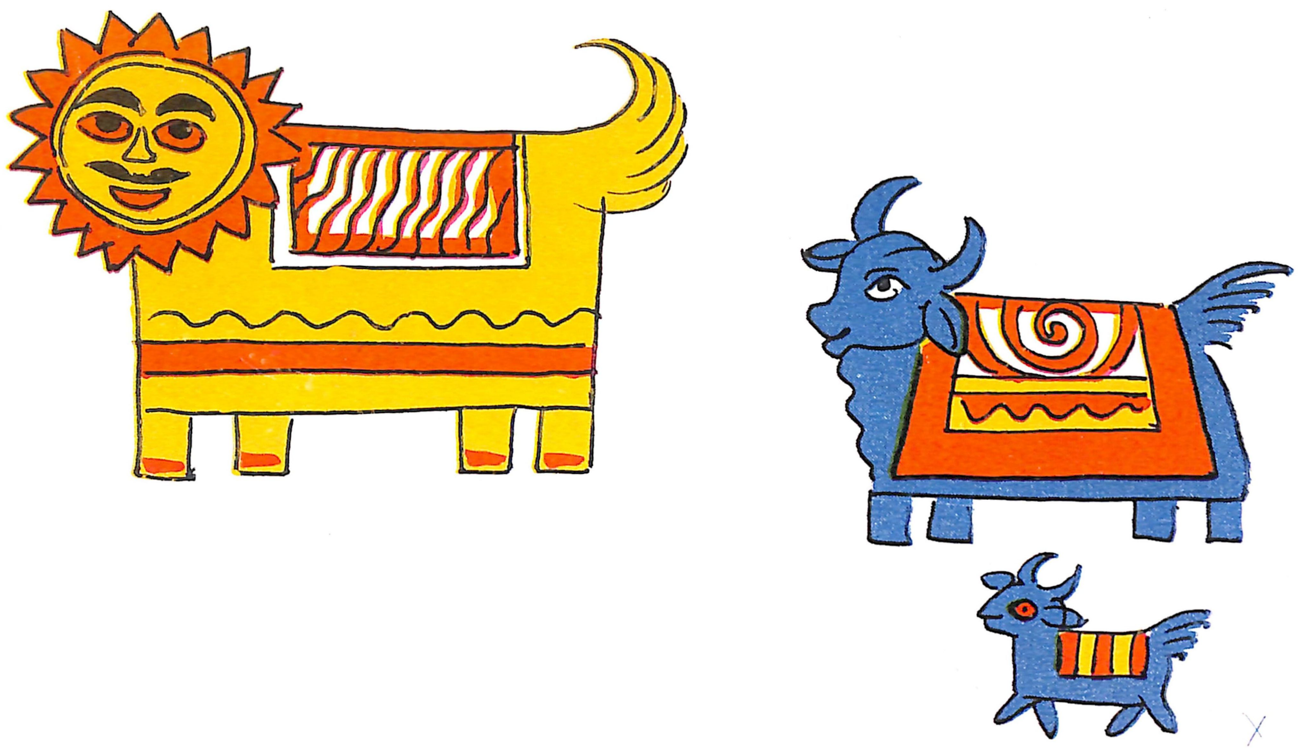

16- बहुरा चौथ

17- उमा महेश्वर

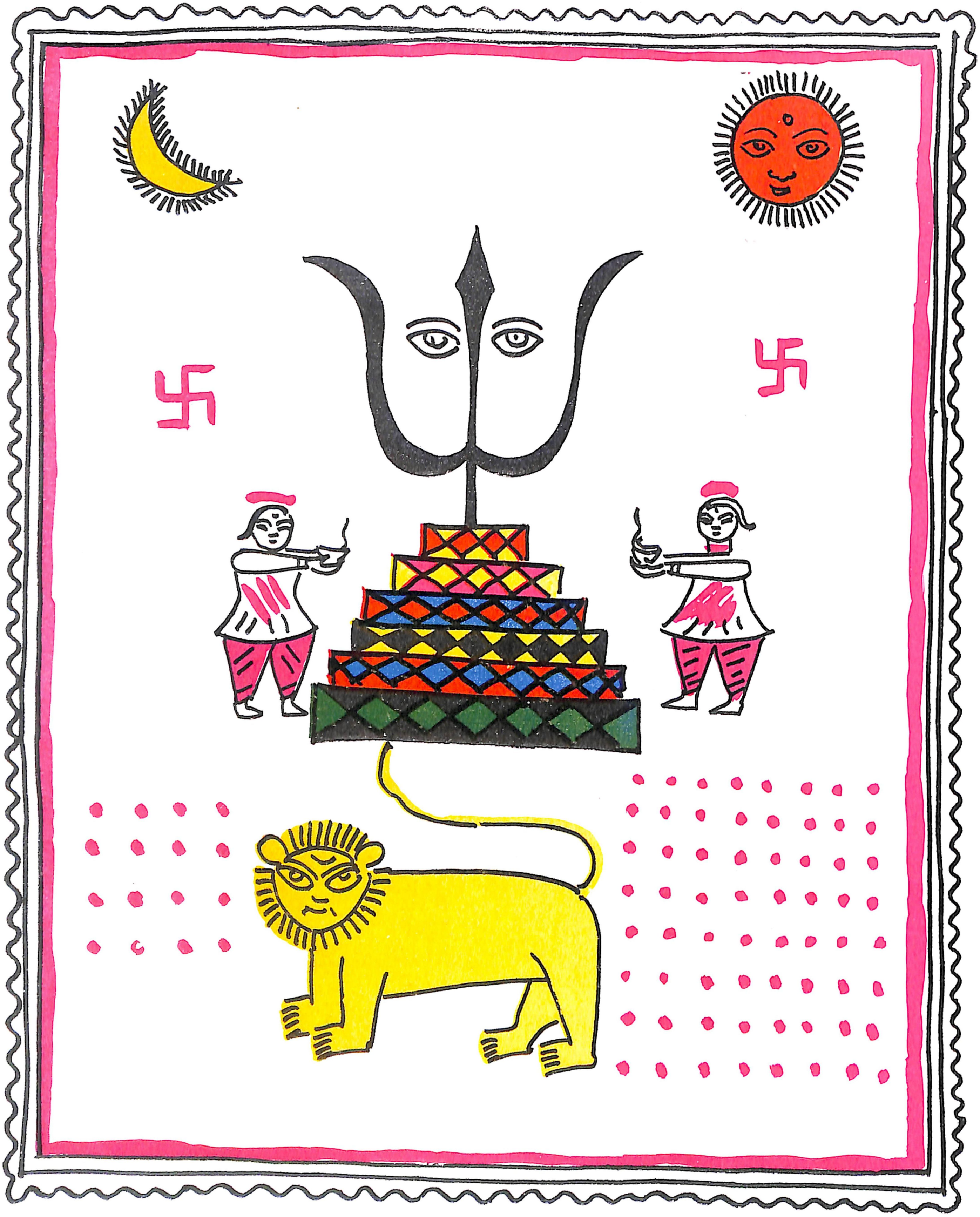

18- दुर्गा अष्टमी

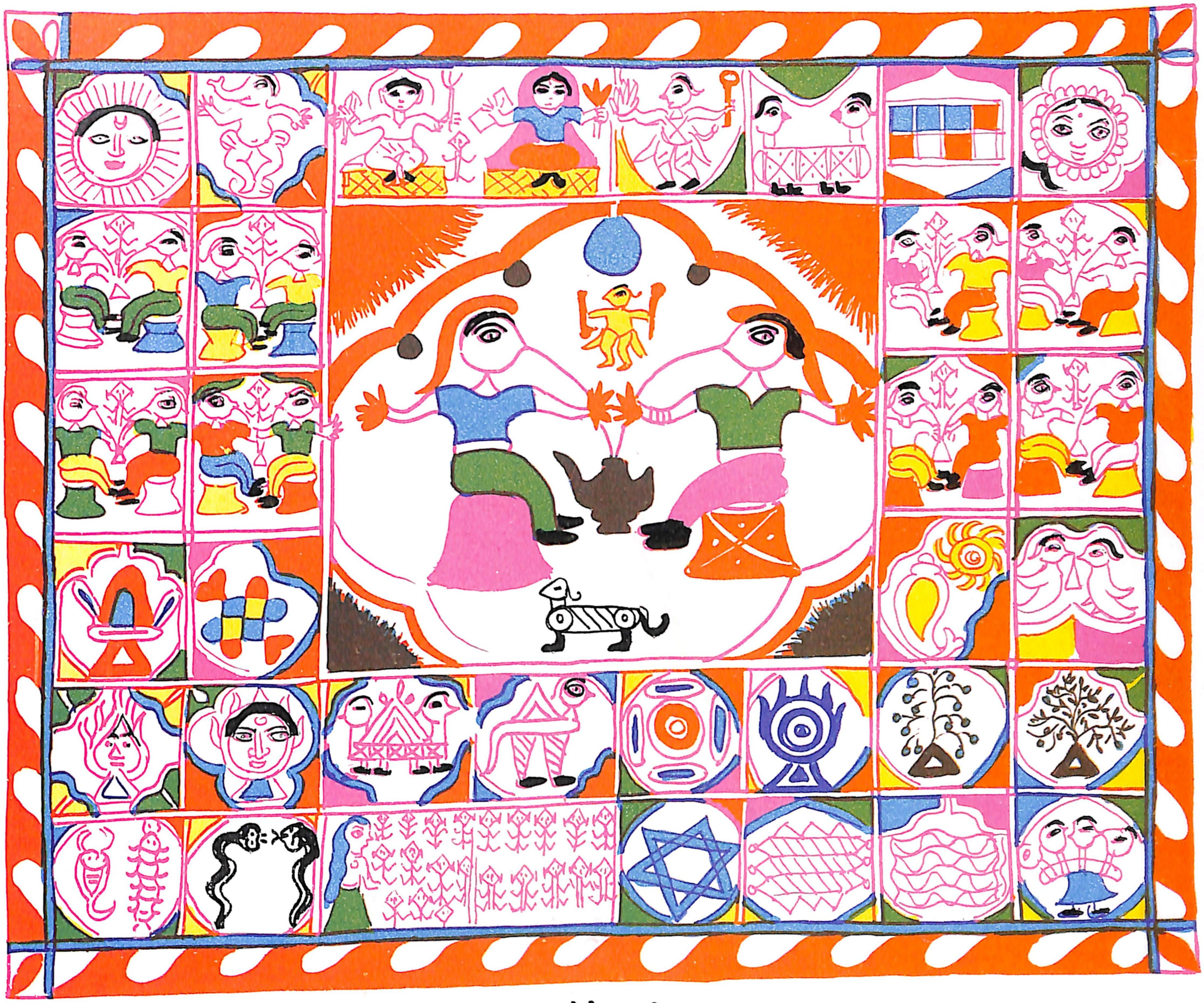

19- अहोई अष्टमी

20- धनतरस पर देहरी पर बनाया जाने वाला चौक

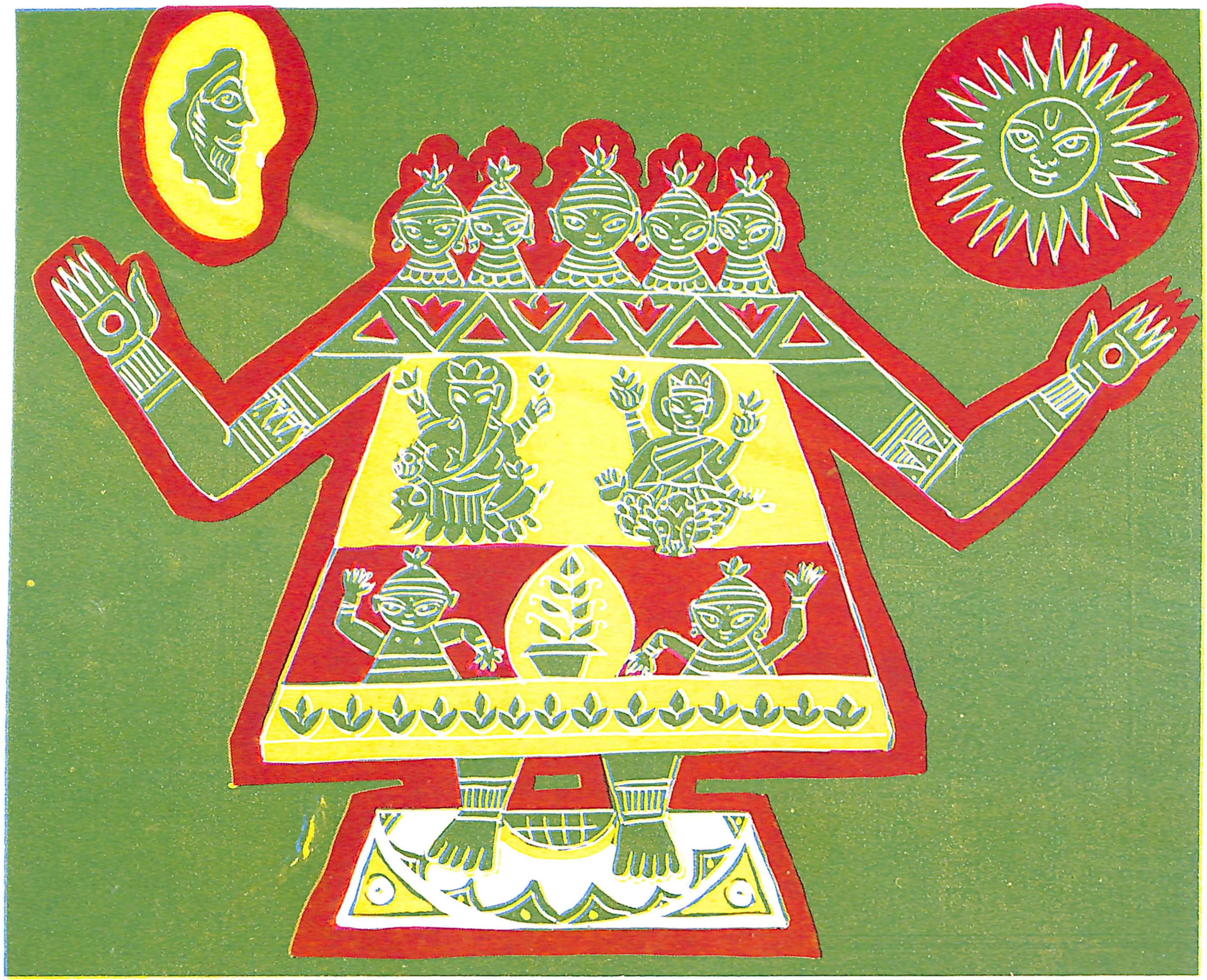

21- दीपावली

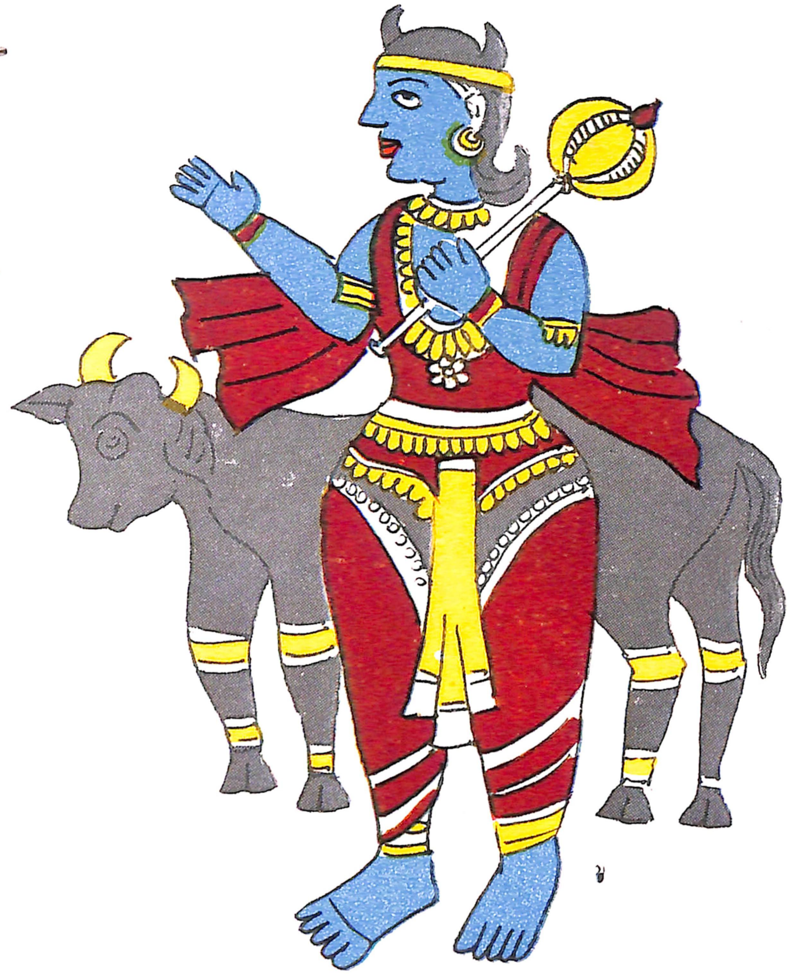

22- यम द्वितीया यम का चित्र

23- कार्तिक पूर्णिमा

24- राम विवाह का कोहबर

25- ईषान व्रत

संस्कृति विभाग उ. प्र.
कलाकार अनदर ग्रांट

संक्षिप्त परिचय

डा. विद्याविन्दु सिंह

जन्म– 2 जुलाई, 1947

ग्राम– जैतपुर, सोनावाँ, फैजाबाद। माता श्रीमती प्राण देवी, पिता श्री देवनारायण सिंह, पति श्रीकृष्ण प्रताप सिंह, श्वसुर गृह-ग्राम-बनगाँव, डिहवा, फैजाबाद ।

शिक्षा– एम.ए. (हिन्दी, भाषा विज्ञान), बी.एड., पीएच.डी., लोक साहित्य के अभिप्रायों का व्याकरण विषय पर डी. लिट्. हेतु शोध कार्य ।

प्रकाशन–अवधी लोकगीतः समीक्षात्मक अध्ययन (शोध ग्रन्थ) लोक मानस (निबन्ध संग्रह), वधूमेध (कविता संग्रह), चंदन चौक (अवधी लोकगीत संग्रह), बखरी के लोग (कहानी संग्रह), पीर पराई (लोककथा संग्रह), सोंठ गाँठ (लोककथा संग्रह), अवध की लोक कथाएँ(लोक कथा संग्रह), अँधेरे के दीप (लघु उपन्यास), फूलकली (लघु उपन्यास), राजा की पोल (लोक कथा संग्रह), ए क्रिटिकल इंवेंट्री आफ रामायण स्टडीज इन दि वर्ल्ड (फर्स्ट वाल्यूम में–स्टोरी आफ राम), हाइकु 89 में हाइकु संकलित, अपनी जमीन (कहानी संग्रह), उत्तर प्रदेश की लोक कलाएं (व्रत, पर्व, त्योहार सम्बन्धी)

मुद्रणाधीन– विवाह के लोक मंगल का संसार (विवाह संस्कार के गीत), बाघ बाबा का चौरा (बाल-किशोर उपयोगी कहानियाँ), लोकमानस में रामकथा, लोकमानस में गंगा, (लोक साहित्य विवेचन) दुलारी बेटी (लोक कथा संग्रह), पहाड़ को दिया वचन (लोक कथा संग्रह), काँटो का वन (हाइकु संग्रह), घर की भाषा घर का भाव (निबन्ध संग्रह), सबके अच्छे दिन लौटें (व्रत कथाओं का संग्रह), चन्द्रावती (नाटक), तुरन्त (नाटक), अमर वल्लरी (कविता संग्रह, नारी चेतना परक), सच के पाँव (कविता संग्रह) ।

अन्य विविध विषयक बारह पाण्डुलिपियाँ प्रकाशन हेतु लगभग तैयार ।

विभिन्न साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं एवं ग्रन्थों में रचनाएँ प्रकाशित एव संकलित । आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के विभिन्न केन्द्रों से निरन्तर प्रसारण, देश व विदेश की संस्थाओं में सदस्य, परीक्षक एवं सम्पादक तथा शोधपत्र वाचन व व्याख्यान ।

सम्पादन– अतएव मासिक पत्रिका एवं भाषा–भारती त्रैमासिक तथा मानद सम्पादक कनाडा हिन्दी अकादमी द्वारा प्रकाशित 'प्रवासी भारतीय' त्रैमासिक पत्रिका। अन्य साहित्यिक शैक्षिक–गतिविधियों से निरन्तर सम्बद्ध।

सम्मान– उ.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन से सुभद्रा कुमारी चौहान पदक से तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से साहित्य महोपाध्याय की मानद उपाधि से सम्मानित।

सम्प्रति– उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ में उपनिदेशक पद पर कार्यरत ।

श्रीमती प्रभा पंवार

जन्म– 12 जनवरी, 1932 ग्वालियर, म.प्र.। माता श्रीमती भगवती देवी, पिता श्री रामसरन वर्मा (डिप्टी डेवेलपमेण्ट कमिश्नर म.प्र.) पति श्री अवतार सिंह पँवार विख्यात मूर्तिकार, चित्रकार।

स्नातक– ललित कला एवं हस्तशिल्प में, कला भवन, विश्व भारती, शान्ति निकेतन,

गुरु– आचार्य नन्दलाल बोस, श्री रामकिंकर बैज, श्री सुरेन्द्र नाथ कार, श्री कृपाल सिंह शेखावत एवं श्रीमती गौरी देवी भंजा ।

विशेष ट्रेनिंग– श्रीमती गौरी देवी भंजा (पुत्री आचार्य नन्दलाल बोस), के निरीक्षण में– विषय– बाटिक, चर्म कार्य, अल्पना एवं आलेखन । प्रवक्ताः– ड्राइंग एवं चित्रकला– आर जी कॉलेज मेरठ, 1954–1960 तक।

प्रवक्ता एवं इंचार्ज– गृह कला एवं गृह शिल्प विभाग, कला एवं शिल्प महाविद्यालय 1960 से 1992 तक । 1992 से अब तक–अंशकालीन प्रवक्ता कला एवं शिल्प महाविद्यालय, लखनऊ ।

पुरस्कार– राष्ट्रीय पुरस्कार –"बाटिक चित्र ड्रेगन" पर अखिल भारतीय हस्तकला बोर्ड । स्टेट पुरस्कार दो बार ललित कला अकादमी उ.प्र. से ।सर्वश्रेष्ठ बाटिक पुरस्कार कण्टेम्परेरी. आर्ट प्रदर्शनी वाल्टेयर । सर्वश्रेष्ठ बाटिक पुरस्कार, कला वीथिका, कानपुर । सांस्कृतिक आदान–प्रदान कार्यक्रम में भारत ने एकल बाटिक चित्र कला प्रदर्शनी के लिए चेकोस्लोवाकिया भेजा, 1971.

तीन प्रदेशों की लोककला अल्पना एवं भित्ति चित्र, संकलन के लिए अखिल भारतीय हस्त कला बोर्ड द्वारा फेलोशिप प्रदान , प्रदेश थे उ. प्र., म. प्र., एवं बिहार ।

सांस्कृतिक कार्य विभाग द्वारा सीनियर फैलोशिप महाकवि कालिदास के ग्रन्थों पर आधारित चित्र जलरंगों में बनाने हेतु ।

1993 एवं 1994 में पर्यटन विभाग द्वारा ताज महोत्सव में शिल्पग्राम सजावट के लिए निमंत्रण । देश-विदेश में बारह एकल प्रदर्शनियाँ अब तक प्रदर्शित हो चुकी हैं । स्वयं कला की साधना करते हुए कला के माध्यम से छात्रों की कलात्मक रुचि और उनके व्यक्तित्व के विकास का कार्य करने का संकल्प ।